श्री मुणोत मेघमाला पुष्प नं० [illegible]

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

श्रीमद् देवेन्द्र सूरि विरचित

श्री कर्मग्रन्थ

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—

श्री लाधूरामजी सुत मेघराज मुणोत

फलौधी (मारवाड) निवासी

प्रकाशक—

श्री मुणोत मेघमाला

खैरागढ (म० प्र०)

प्रबन्धकर्ता—

भीखमचद मुणोत, खैरागढ राज०

प्रथमावृत्ति १००० वि० स० १९८१

द्वितीयावृत्ति १००० वि० स० २०१७

❀ धन्यवाद ❀

खरतर गच्छीय जैनाचार्य प्रखर वक्ता वीरपुत्र श्रीमद् जिन आनन्द-सागर सूरीश्वरजी म० सा० की आज्ञानुवर्तिनी प्रवर्तिनीजी श्री पुन्यश्रीजी म० की समुदायिनी आर्या श्री हरि श्रीजी महाराज की शिष्या विदुषी आर्या श्री धर्म श्रीजी म० के उपदेश से जिन जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ प्रकाशन हेतु सहायता प्रदान की है उनकी शुभ नामावली—

२००) श्री० पिस्ताबाई ने अपनी दीक्षा के अवसर पर।

२००) श्री० गुलाबचन्दजी मुकनचन्दजी गुलेछा फलोधी वाले।

१०१) श्री० गुलाबचन्दजी मुणोत, खैरागढ़।

५०) अजमेर निवासी बाई फतेकुंवरजी।

५०) श्री० भीखमचन्दजी मुणोत, खैरागढ़।

४१) एक महासमुन्द निवासी।

३५) श्री० लूनी बाई (श्री मांगीलालजी वछावत)।

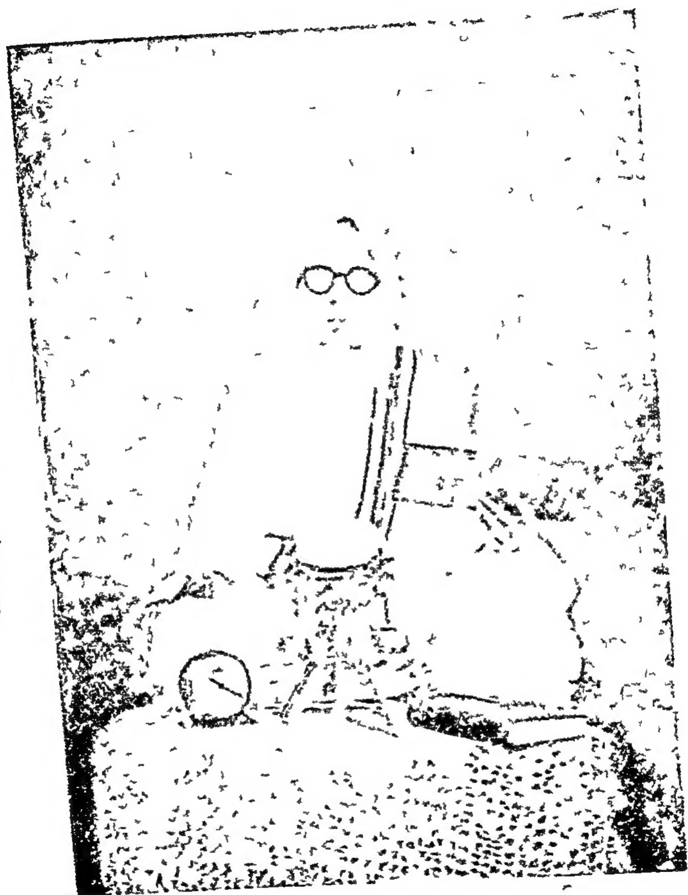
उक्त सब सज्जनों को धन्यवाद है। अन्य सब सज्जनो के लिये यह अनुकरणीय है।

—प्रकाशक



आर्या श्री धर्मश्री जी म० सा०

खेरागढ़ चातुर्मास २०१४ सं०



जन्म वि० सं० १९५२ (खेरागढ़)

दीक्षा वि० सं० १९७६ (फलौदी)

सादर समर्पित

वीतराग मार्गानुगामिनी

महान् तपोनिष्ठ

अनेक गुणालकृत

परम पूज्या

आर्यारत्न

श्री श्री १००८ श्री

श्री धर्म श्री जी महाराज के

कर कमलों में

सादर समर्पित

लादूराम मेघराज
सैंरागढ़ (म० प्र०)

विनीत—
मघराज मुणोत

आर्यारत्न श्री धर्म श्री जी महाराज

[संक्षिप्त जीवन झांकी]

आपका जन्म वि० सं० १९५३ में खैरागढ (म० प्र०) में हुआ। आप का संसारी नाम धापू बाई है। पिता का नाम श्री लाधूरामजी मुणोत तथा माता का नाम तिजांबाई था। पिता श्री का बाल्यावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था।

आपका नाना बडा धर्मपरायण थे अतः उनकी नेश्राय में रह कर आपका जीवन भी धर्म मार्ग की ओर ही सदा प्रवृत्त रहा। सं० १९६६ में आपका विवाह फलौदी निवासी श्री जीवराजजी गोलेछा के चतुर्थ पुत्र श्री लालचन्दजी के साथ हुआ किन्तु थोडे समय पश्चात ही आपका स्वर्गवास हो गया। अल्पावस्था में ही पति वियोग ने आपको विशेष वैराग्यवान बनाया। धर्माराधन एवं तपानुष्ठान ही आपके जीवन के मुख्य ध्येय बन गये। और अन्ततः खरतरगच्छीय प्रवर्तिनीजी श्री पुन्यश्री जी म० की आज्ञानुवर्तिनी आर्या जी श्री हरि श्रीजी म० की शिष्या रूप में आप सं० १९७६ में फलौदी में महा भगवती दीक्षा अंगीकार कर कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई। आपका नाम धर्मश्री जी रक्खा गया।

अब क्या था, आपने धर्माभ्यास की ओर विशेष लक्ष्य रक्खा और अल्प काल में ही जैन तत्व ज्ञान की महा पण्डिता के रूप में चहुँदिशि आपका यशोगान होने लगा। मधुर वाणी और गंभीर व्याख्याकार होने से प्रखर वक्ता के रूप में भी आप लोकप्रिय बनी और आज मध्यप्रदेश की जैन जनता आपके अमृतोपम उपदेशों का लाभ उठा रही हैं।

हमारे पुण्योदय से सं० २०१४ का आपका चातुर्मास खैरागढ हुआ। सं० २०१५ का खरियार रोड, सं० २०१६ का चातुर्मास धमतरी हुआ। धमतरी में चातुर्मास उपरांत आपके शुभ करकमलों से दो बहिनों ने भगवती दीक्षा अंगीकार की इनका नाम पद्म प्रभाश्री जी और जयप्रभा श्री जी रक्खा। एक दीक्षा बागबहरा में हुई जिनका नाम पुष्पा श्री जी रक्खा। ये तीनों शिष्याएँ बडी शांत स्वभावी महा भाग्यवान हैं।

वर्तमान में आप ७ साध्वी समुदाय के अनुपम सिंघाडे के साथ लोक कल्याण कार्यों में निरत रत हैं।

—मेघराज मुणोत, खैरागढ

प्रस्तावना

संसार में बड़ी विषमता दिखाई देती है। कोई अमीर-कोई गरीब, कोई रूपवान कोई कुरूप, कोई विद्वान है तो कोई मूर्ख, कोई कमजोर है तो कोई सजोर आदि अनेक समस्याओं को समझाने के लिये जैन साहित्यमें कर्मग्रन्थ अपना एक खास स्थान रखता है। यों तो इस विषय पर अन्य धर्मों में कुछ न कुछ वर्णन पाया जाता है किन्तु जैन कर्मग्रन्थ में (कर्म साहित्य) इसका जितना सूक्ष्मतम वर्णन पाया जाता है वह अन्य धर्म ग्रन्थों में नहीं पाया जाता।

कर्म क्या है, इसका क्या स्वरूप है, कर्म किस तरह आत्मा के साथ बंध जाते हैं और फिर किस तरह अलग विलग हो जाते हैं, कर्म का बनाने वाला कौन है, क्या ये स्वत ही बनते हैं या कर्म बननेमें किसी की प्रेरणा है, क्या किये हुये कर्मों का फल स्वत ही कर्म देते हैं, या अन्य कोई देता है, कर्मों का फल किस किस रूप में होता है और उसका आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है, और ये फल तत्काल ही देते हैं या देर से या फलदान देने का कोई क्रम है। लोक में कर्म रजों का क्या सभी जगह एकसी ही अवस्था है? इस तरह के अनेक प्रश्नों को समझाने के लिये कर्म ग्रन्थ में कर्मों की १० मुख्य अवस्थायें बताई गई हैं जिन्हें १० करण भी कहते हैं।

१ बंध २ उद्वर्तन, ३ अपवर्तन, ४ सत्ता ५ उदय ६ उदीरणा ७ संक्रम ८ उपशम ९ निधत्ति १० निकाचन।

प्रथम भाग—

इसमें १० करणोंपर विचार न कर बंध पर ही मुख्यतया विचार किया गया है और यह बतलाया गया है कि कर्म का स्वरुप क्या है, आत्मा के साथ कर्म किस तरह बंधते हैं, और आत्मा के कौन कौनसे गुणों को कौन कौनसी प्रकृतियां आच्छादित करती हैं, और उनका आत्मा के गुणोंपर क्या प्रभाव पडता है। इन बातोंको सरलतासे समझाने के लिये बन्ध के चार भेद प्रथम बतलाये हैं। उसके बाद मूल प्रकृतियां १५८ के नाम बताकर उनका विशेष स्वरुप समझाया गया है।

दूसरा भाग—

दूसरे विभाग में आत्म शक्तियों की क्रमिक विकास अवस्थाओं को लेकर जिन्हें कर्मग्रन्थ में १४ गुणस्थान कहे हैं, उनकी अवस्थाओं का विशेष वर्णन है। और एक सौ अट्ठावन प्रकृतियों मे से बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता पर विचार किया गया है।

बंध—

आत्मा के साथ दूध पानी की तरह मिल जाना बंध है। इसमें एक सौ बीस प्रकृतियों का बंध मान कर कितनी कितनी प्रकृतियों का बंध किस किस स्थान में होता है और उसके न्यूनाधिक होने के कारणों पर विचार किया गया है।

उदय—

शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना 'उदय' है। उसमें एक सौ-बाईस प्रकृतियों का उदय मानकर गुण स्थान क्रम से न्यूनाधिक प्रकृतियां समझाई गई हैं।

उदीरणा—

उदय प्राप्त कर्म दलिकों (कर्मों) के साथ प्रयत्न विशेष से खींच कर कर्मों को भोग लेना उदीरणा है। इसमें उदय के समान १२२ प्रकृतिया मानकर गुण-स्थान के द्वारा उदय उदीरणा के अंतर पर प्रकाश डाला है।

सत्ता—

कर्मों का अपने स्वरुप को न छोडकर आत्मा के साथ लगे रहना 'सत्ता' है। इसमें १४८ प्रकृतियों की सत्ता मानकर किस किस गुण स्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है, यह समझाया गया है।

तीसरा कर्मग्रन्थ—

तीसरे कर्म ग्रन्थ में मूल १४ मार्गणाओं के उत्तर भेद ६२ कहे गये हैं। मार्गणाओं की कल्पना कर्म पटल के तरतम भाव पर जिस तरह गुणस्थान में की गई है, उस पर अवलंबित नहीं है। किन्तु शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भिन्नतायें जो जीवको घेरी हुई हैं वही मार्गणाओं की कल्पना है। अर्थात् जीव के स्वाभाविक वैभाविक रुपों का अनेक प्रकार से पृथक्करण है। मार्गणायें सह भावनी हैं। किन्तु गुण स्थान इससे विपरीत है। इसलिये जीव में एक साथ १४ मार्गणायें किसी न किसी रूप (प्रकार) से पाई जाती हैं। मार्गणाओं के निम्नलिखित मूल भेद १४ और उत्तर भेद ६२ ये हैं। यथा —

(१) मूलभेद—

(१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) काया, (४) योग, (५) वेद, (६) कषाय

(७) ज्ञान[८], (८) संयम[७], (९) दर्शन[४], (१०) लेश्या[६], (११) भव्य[२], (१२) सम्यक्त्व[६], (१३) संज्ञि[२], (१४) आहार[२]।

चतुर्थ कर्मग्रन्थ—

चौथे कर्म ग्रन्थ में मुख्यतया तीन विभाग हैं। (१) जीव स्थान, (२) मार्गणा स्थान और (३) गुण स्थान।

ये सब जीव की अवस्थायें हैं तो भी इनमें परस्पर अन्तर है, इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा ५ भावों का स्वरुप और संख्या का वर्णन भी है।

[१] जीव विभाग में जीव के १४ भेदो को लेकर पहला गुण स्थान (२) योग, (३) उपयोग, (४) लेश्या, (५) बंध, (६) उदय, (७) उदीरणा, (८) सत्ता इन आठ विषयों पर कर्म बंध की प्रकृतियों पर प्रकाश डाला गया है।

[२] मार्गणा स्थान में गति इन्द्रिय आदि मार्गणाओं के ६२ भेदों को लेकर (१) जीवस्थान (२) गुण स्थान (३) योग (४) उपयोग (५) लेश्या (६) अल्प बहुत्व इन छः विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

[३] गुणस्थान में—१४ गुण स्थानों को लेकर (१) जीव स्थान (२) योग (३) उपयोग (४) लेश्या (५) बंध हेतु (६) बंध (७) उदय (८) उदीरणा (९) सत्ता इन नौ विषयों का वर्णन है।

[४] भाव में—५ भावों का स्वरूप और जीवों से भावों की क्या विशेषता है यह बतलाया गया है।

(८) सन्या—कर्मग्रन्थ में सख्या के कितने विभाग है और उनकी गिनती सख्याते असख्याते और अन त में किस तरह की गई है इसका गणित बताया गया है।

पाचवे कर्म ग्रन्थ में १६ अवस्थाओं का वर्णन

(१) ध्रुवबधनीय (२) अध्रुवबधनीय (३) ध्रुवोदय (४) अध्रुवोदय (५) ध्रुवसत्ता (६) अध्रुवसत्ता (७) सर्वदेशघाती (८) अघाती (६) पुण्य प्रकृति (१०) पाप प्र० (११) परावर्तमान (१२) अपरावर्तमान (१३) क्षेत्र विपाकी (१४) जीव विपाकी (१५) भाव विपाकी (१६) पुद्गल विपाकी उपरोक्त १६ अवस्थाओं पर किस दृष्टि से और अलग अलग कितना सुगमता से विवेचन किया गया है, यही एक कर्मग्र थ को विशेष महत्ता है।

(१) बध की दृष्टि से १२८ प्रकृतियों मे प्रकृतिबध, स्थिति बध, रसबध, और प्रदेश बन्ध इन ४ प्रकार के बधों का स्वरूप बतलाया है।
(२) प्रकृतिबन्ध मे ५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

(१) प्रकृति बन्ध का स्वरूप (२) मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में भूयस्कार (३) अल्पतर (४) अवस्थित (५) अवक्तव्यबधों की सख्या बताई है।

(३) स्थितिबध में ४ विषयों पर प्रकाश डाला है

(१) स्थिति ब ध का स्वरूप (२) मूल तथा उत्तर प्रकृतियो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति (३) एकेन्द्रिय आदि जीवों के जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति के प्रमाण निकालने की रीति (४) उत्कृष्ट तथा जघ य स्थिति ब ध के स्वामियों का वर्णन।

(४) अनुभाग बन्ध में ४ विषय हैं—

(१) अनुभागबन्ध का स्वरूप (२) शुभा शुभ प्रकृतियों में तीव्र या मंद रस पडने का कारण (३) शुभा शुभ रसका विशेष स्वरूप (४) उत्कृष्ट तथा जघन्य अनुभावबन्ध के स्वामियों का वर्णन।

(५) प्रदेश बन्ध में तीन विषयों का वर्णन है

(१) प्रदेश बन्ध का स्वरूप (२) वर्गणाओं का स्वरूप और उनके अवगाहना (३) बद्ध कर्म दलिकों का मूल तथा उत्तर प्रकृतियों में बटवारा। इस के पश्चात उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी का विस्तार से वर्णन करते हुवे ग्रन्थ को परिपूर्ण किया। इस तरह श्रीमद देवेन्द्रसूरी जी ने कर्मग्रन्थ के अभ्यासियों के लिये संक्षेप में और सारगर्भित विवेचन किया है। उसीको दृष्टि मे रखते हुए अनुवादक महोदय ने भी द्वितीय आवृति में भी संक्षेप में ही वर्णन किया है; जो नित्य पाठयों के लिये विशेष उपयोगी होगा।

यों तो इस विषय पर अनेकों विद्वानों ने बड़ी बड़ी गंभीर प्रस्ताव—नाएं लिखी हैं जो विषय को इतनी सूक्ष्मता से स्पर्श करती है कि उनको समझने के लिये उतने ही सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यक्ता है। किन्तु यह अनुवाद जिस दृष्टि कोण से लिखा गया है उसको ध्यान में रखने मैंने भी प्रस्तावना के दो शब्द लिखे है।

फर्म
भीखमचन्द प्रेमचन्द
खैरागढ़—ता० २१-६-६०

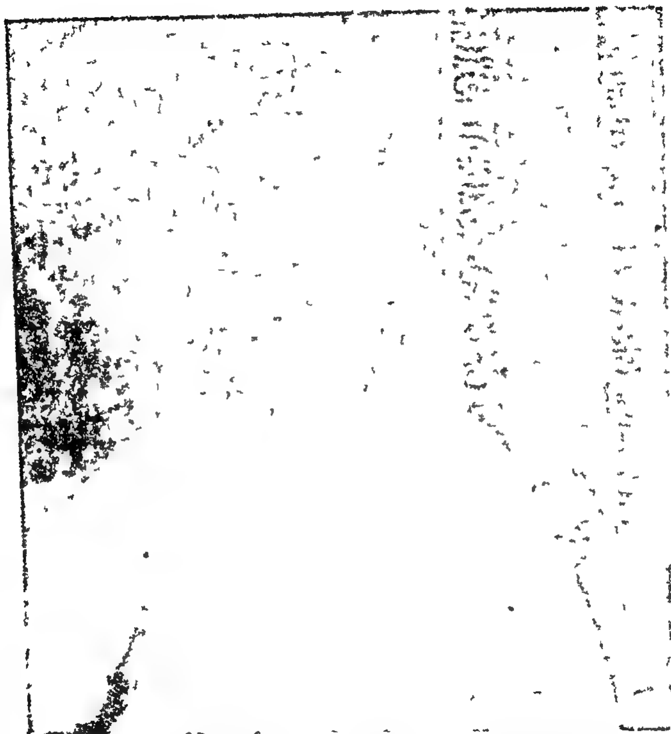
भीखमचन्द मुणोत
खैरागढ

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	११	मही	नहीं
४	२६	तृणकीसोका	तृण की सीक
५	१५	मनुक्रम	अनुक्रम
६	१६	सचायण	सचयण
७२	२	तिस	तिसू
२३	१	मिसेणपुव्वीणुदय	मिसे सय मणु पुव्वीणुदय
२८	१	अपवज्जप	अपवज्जत
३७	१३	नरकादि१६	×
३२	२०	विरताद	देश विरतादि
३४	८	केसदुगि	केवल दुगि
३५	७	जुजोग	सज्जोग
३७		६३	६६
३७		१	१७
४२	१५	७-८-६-५	८-८-६ ५-७
४६	१५	अचक्षुदर्शन	चक्षुदर्शन
५७	८	देमे	देखे
५८	३	द्दोरग	दारग
५८	२४	प्रदेश	प्रदेश बंध में योगकी
५६	१३	सख्यल	मज्यलत्रक

६१	६	३	२
६१	१०	६	५-६
६१	११	२-५	५
६१	१२	२	५-२
६१	१३	५–२	२
६१	१२	अनन्तान्त	अनन्तानन्त
७२	६	सइमं	सम्मं
७२	११	लाति	जाति
७२	२२	ध्रुव	नव
७५	५	सहायणिर	सहारणियर
७६	१३	६	६७
८२	१७	मु	८ मु
८५	१५	देवता और	देवता
८७	४	सुहुमभर	सुहुमेभर
६१	२	बंन्धे	वन्धो
१०१	४	सन्मो	सम्मो
१०६	८	मन	मन हिय

कर्म ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक



श्री मेघराजजी मुणोत खैरागढ़

(जन्म-वि० सं० १६४३ फलोदी)

॥ ॐ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

अथश्री

श्रीमद् देवेन्द्रसूरीश्वर विरचित

कर्म विपाक नामा पहला कर्मग्रन्थ

हिन्दी साऽनुवाद



सिरिवीरजिण वंदिय, कम्म विवाग समासओ वुच्छं ।
कीरइ जिएण हेउहिं, जेणतो भणए कम्म ॥ १ ॥
पयइ ठिइ रस पएसा, त चउहा मोअगस्स दिठ्ठता ।
मूल पगइट्ठ उत्तर, पगई अडवन्नसय भेय ॥ २ ॥

(मैं) श्री वीर जिनेश्वर को नमस्कार कर संक्षेप से कर्मविपाक "नामा" ग्रन्थ को कहूंगा। जीव न जिन हेतुओं (मिथ्यात्व अव्रतयोग कषाय) से प्राप्त किया है[1] इस लिये "उसको" कर्म कहते हैं ॥ १ ॥ वे (कर्म) प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेश से मोदक के दृष्टा त से चार (प्रकार) हैं। मूल प्रकृति आठ (और) उत्तर प्रकृति एकसो अठावन भेद हैं ॥ २ ॥

१ ... योग्य पुद्गल प्रदेशों के साथ एकरूपता ।

इह नाण दंसणावरण, वेय मोहाउ नाम गोयाणि ।
विग्घं च पण नव दु अट्ठवीस चउ तिसय दुपण विहं ॥ ३ ॥
मइ सुय ओही मण केवलाणि नाणाणि तत्थ मइनाणं ।
वंजणावग्गह चउहा मण नयण विणिदिय चउक्का ॥ ४ ॥
अत्थुग्गह ईहावाय धारणा करण माणसेहिं छहा ।
इय अठवीस भेयं चउदसहा वीसहा व सुयं ॥ ५ ॥
अक्खर सन्नी समं साइअं खलु मपज्जवसियं च ।
गमियं अंगपविट्ठं सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ६ ॥

यहां ज्ञाना (वरणीय) दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय (क्रमशः) पांच, नव, दो, अठावीस, चार, एकसो तीन, दो (और) पांच भेद हैं ॥ ३ ॥ ज्ञान (पांच है) मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यव (और) केवल। जिस में मति ज्ञान[२] मन, आंख विना चार इन्द्रियां आश्रय व्यंजनावग्रह[३] चार प्रकार हैं ॥ ४ ॥ अर्थावग्रह[४], ईहा[५], अपाय और धारणा (ये प्रत्येक) इन्द्रिय (और) मन सहित छः प्रकार है। यह अठावीश भेद (मतिज्ञान के) श्रुतज्ञान के चौदह या वीश भेद है ॥ ५ ॥ अक्षरश्रुत, सन्नीश्रुत, सम्यक्श्रुत, सादिश्रुत और सपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अंग प्रविष्टश्रुत ये सातों प्रतिपक्षि[६] सहित (गणनेसे चौदह भेद श्रुतज्ञान) ॥ ६ ॥

---

२ मतिज्ञान अठावीस प्रकार के हैं ॥ ३ इन्द्रियो द्वारा पदार्थ का स्पर्श हो के अव्यक्त अवबोध, ४ पदार्थ को सामान्यपने जानना, ५ विचारणा, ६ अनक्षर, असन्नी, असम्यक्, अनादि, अपर्यव० अग० अंगबाह्य ।

पज्जय अक्खर पय संघाया पडिवत्ति तहय अणुओगो ।
पाहुड पाहुडपाहुड वत्थु पुव्वाय स समासा ॥ ७ ॥
अणुगामि वढ्ढमाणय पडिवाइयरविहा छहा ओही ।
रिउमइ विउलमई मणनाण केवल मिगविहाण ॥ ८ ॥
एसिं ज आवरण पडुव्व चक्खुस्स त तया वरण ।
दसण चउ पणनिद्दा वित्तिसम दसणावरण ॥ ९ ॥
चक्खू दिट्ठि अचक्खू सेसिंदिय ओहि केवलेहिं च ।
दसण मिह सामन्न तस्सावरण तय चउहा ॥ १० ॥

पर्यायश्रुत, अक्षरश्रुत, पदश्रुत, सघातश्रुत, प्रतिपत्तिश्रुत, इसी तरह अनुयोगश्रुत, प्राभृतश्रुत, प्राभृतप्राभृतश्रुत, वस्तुश्रुत, और पूर्वश्रुत (ये दस भेद) समास सहित (प्रत्येक शब्द के साथ समास शब्द जोड़नेसे बीस भेद श्रुत के होते हैं ॥ ७ ॥ अनुगामि, वर्धमान, प्रतिपाति । इतर भेद (अनानुगामि, वर्धमान, अप्रतिपाति, गणने से) छ प्रकार अवधिज्ञान है ऋजुमति विपुल मति, (दो भेद) मन पर्यवज्ञान है। (और) केवल ज्ञान एक प्रकार है ॥ ८ ॥ इन (मति आदि पाच ज्ञानों) का जो आवरण पट्ट समान आवरण है उस (आवरण) को ज्ञानावरणीय कहते हैं। दर्शनावरणीय चार, निद्रा पाच (यह नौ) पहरेदार के समान दर्शनावरणीय कर्म है ॥ ९ ॥ चक्षु दर्शन, शेष इन्द्रिय द्वारा अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन, केवल दर्शन, यह सामान्य (उपयोग) हैं इसके आवरण को चार प्रकार का दर्शनावरणीय कहते हैं ॥ १० ॥

सुहपडिबोहा निद्दा निद्दानिद्दाय दुक्ख पडिबोहा ।
पयला ठिओव विट्ठस्स पयल पयलाय चंकमओ ॥११॥
दिणचिन्ति यत्थकरणी थीणद्धी अद्धचक्की अद्धवला ।
महु लित्त खग्गधारा लिहणं व दुहाउ वेयणियं ॥१२॥
ओसन्नं सुर मणुए सायमसायं तु तिरिय निरएसु ।
मज्जं व मोहणीयं दुविहं दंसण चरण मोहा ॥१३॥
दंसण मोहं तिविहं सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं
सुद्ध अद्धविसुद्धं अविसुद्धं तं हवइ कमसो ॥१४॥
जिय अजिय पुण्ण पावासव संवर वंध मुक्ख निज्जरणा ।
जेणं सद्दहइ तयं सम्मं खयंगाइ वहु भेयं ॥१५॥

सुखसे जागना (वह) निद्रा, दुखः से जागना (वह) निद्रा निद्रा, खड़े २ बैठे २ प्रचला, चलते फिरते प्रचला प्रचला ॥११॥ दिन के सोचे हुए कार्य को करने वाली (निद्रा) थीणद्धी कहलाती है (इस निद्रावाले का वल) वासु देव के वल से आधा होता है मधुलिप्त खंगधारा को चाटने के समान दोप्रकार का वेदनी कर्म है ॥१२॥ प्रायः देव (और) मनुष्यमें साता (वेदनीका उदय) तिर्यंच (और) नरक मेंअसाता (वेदनीका उदय) है ॥ मदिरा के समान मोहनीय दो प्रकारका (यथा) दर्शन मोहनीय(और) चारित्र मोहनीय है. ॥१३॥ दर्शन मोहनीय "कर्म" तीनप्रकार है "यथा" सम्यक्त्व मोहनीय; मिश्र मोहनीय, इसीतरह मिथ्यात्व मोहनीय वे तीनों क्रमशः शुद्ध,अर्द्ध विशुद्ध और अशुद्ध होता है ॥१४॥ जिससे जीव अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वंध, मोक्ष "और" निर्जरा (इन नव तत्वोंकी श्रद्धाहो वह सत्मकत्व मोहनीय क्षायिकादि वहुत भेदसे है ॥१५॥

मीसा न राग दोसो जिणधम्मे अतमुहु जहा अन्ने ।
नारियल दीव मणुणो मिच्छं जिण धम्म विवरीय ॥१६॥
सोलसकसाय नव नोकसाय दुविह चरित मोहणिय ।
अण अप्पच्चक्खाणापचक्खाणाय सजलना ॥ १७ ॥
जा जीव वरिस चउमास पक्खगा नरय तिरिय नर अमरा ।
सम्मा णु सव्वविरई अहखाय चरित्त घायकरा ॥ १८ ॥
जल रेणु पुढवि पव्वय राईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
तिणि सलया कट्ठ ट्ठिअ सेलत्थ भोवमो माणो ॥ १९ ॥

मिश्रमोहनीय "के उदयसे" जैन धर्मके विषय रागद्वेष नहीं होता जैसे नारियल द्वीप के मनुष्यों को अन्न के विषय "राग द्वेष नहीं होता" (इसका उदय) अन्तर मुहूर्त है, (और) जिनधर्म से विपरीत को मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं ॥ १६ ॥ सोलह कषाय (और) नवनो कषाय ऐसे दो प्रकार से चारित्र मोहनीय है। सोलह कषाय बताते हैं। अनन्तानुबधी[४] अप्रत्याख्यानी, [४]प्रत्याख्यानी [४] और सज्वल[४] ॥ १७ ॥ (वे २ मनुक्रम से) यावज्जीव, वर्ष, चतुर्मास (और) पक्ष (रहते हैं) नारकी, तिर्यंच, मनुष्य "और" देवगति (के कारण हैं) और" सम्यक्त्व, देश विरती, सर्व विरती "और" यथाख्यात चारीत्र क घात करने वाले हैं ॥ १८ ॥ जल, रेती, पृथ्वी और-पर्वत की रेखा समान चार प्रकारका क्रोध है तृण कीसीका काष्ट, अस्थि और पत्थर के स्तम्भ (सदृश) मान है, ॥१९॥

१ अनन्तानुबधी क्रोध, अनु० मान, अनु०माया, अनु लोभ, एव अप्रत्याख्यानी,प्रत्याख्यानी और सज्वल प्रत्येक के चार २ भेद गणनेसे सोलह भेद अनन्ता० अप्रत्या० प्रत्या० सज्वल,

माया वलेहि गोमुत्ति मिंढसिंग घणवंसि मूल समा ।
लोहो हलिद्द खंजण कद्दम किमिराग सारिच्छो ॥२०॥

जस्सुदया होइ जिए हास रई अरइ सोग भय कुच्छा ।
सनिमित्त मन्नहा वा तं इह हासाइ मोहणियं ॥ २१ ॥

पुरिसित्थि तदुभयं पइ अहिलासो जव्वसा हवइ सोउ ।
थी नर नपु वेउदओ फुंफुम तण नगर दाहसमो ॥२२॥

सुर नर तिरि निरयाऊ हडिसरिसं नामकम्म चित्ति समं ।
बायाल तिनवइ विहं तिउत्तरसयंच सत्तट्ठी ॥ २३ ॥

वांस की छाल, बैल की मूत्रधारा, मेंढे का सिंग और कठिन वांस की जडके समान माया है और लोभ हरिद्र, खंजन कर्दम (और) किरमचीरंग के सरीखा है ॥ २० ॥ जिसके उदय से जीव को हास्य, रति, अरति, शोक, भय (और) जुगुप्सा कारणवश अथवा अन्यथा विना कारण होती है उसको यहां हास्यादि मोहनीय कर्म कहते हैं. ॥ २१ ॥ जिसके प्रभाव से पुरुष स्त्रीय तथा पुरुष स्त्री दोनों के प्रति अभिलाषा याने मैथुन की अभिलाषा होती हैं वह स्त्री, पुरुष (और) नपुसंक वेद का उदय है (और क्रमशः) कंडे को (अग्नि) तृण की (अग्नि) और नगर दाह के समान है ॥२२॥ देवायुः, मनुष्यायुः, तिर्यंचायु (और) नरकायुः वेडी के समान है ॥ नाम कर्म चितारे के समान है। (वह) बयालीस तीरानवे, एकसो तीन (और) सडसट प्रकार का है ॥ २३ ॥

गइजाइतणु उवगा बधण सघायणाणि सघायणा ।
मठाण वण्ण गध रस फास अणुपुव्वि विहगगई ॥२४॥
पिंडपयडित्ति चउदस परघा उसास आयवुज्जोय ।
अगुरुलहु तित्थ निमिणो वघाय मियअट्ठ पत्तेया ॥२५॥
तस बायर पज्जत्त पत्तेय थिर सुभ च सुभग च ।
सुसरा इज्ज जस तस दसग थावर दस तु इम ॥२६॥
थावर सुहम अपज्ज साहारण अथिर असुभ दुभगाणि ।
दुस्सर णाइज्जा जस मियनामे सेयरा विस ॥ २७ ॥
तस चउ थिर छक्कं अथिर छक्क सुहमतिग थावर चउक्क ।
सुभगति गाइ विभासा तयाइ सखाहिं पयडीहिं ॥२८॥

गति, जाति, तनु, उपाग बन्धन, सघातन, सघयण, सस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी (और) विहायोगति ॥ २४ ॥ (यह) चौदह पिंड प्रकृतिया है ॥ पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थकर निर्माण (और) उपघात यह आठ प्रत्येक प्रकृति है ॥ २५ ॥ त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय और यश कीर्ति (यह) त्रस दशक (कहलाती) है "और" स्थावर दशकयह है ॥२६ स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर अशुभ, दौर्भाग्य, दु स्वर अनादेय (और) अयश कीर्ति यह नाम कर्म की इतर सहित बीस प्रकृतिया हुई ॥ २७ ॥ (अब इन प्रकृतिया का सक्षेप मे कथन करने के लिये सकेत सज्ञा बताते हैं) त्रसचतुष्क, स्थिरषट्क, अस्थिरषट्क, सूक्ष्म त्रिक, स्थावरचतुष्क और सौभाग्यत्रिक आदि संकेत हैं, इसकी आदि से संख्या के अन्त तक की प्रकृतिया समझ लेनी ॥ २८ ॥

वरणचउ अगरुलहु चउ तसाइदुतिचउरछक्कमिच्चाई ।
इय अन्नावि विभासा तयाइसंखाहिपयडीहिं ॥२९॥
गइयाईण उ कमसो चउ पण पण ति पण पंच छ छक्कं ।
पण दुग पण ८ चउ दुग इय उत्तरभेय पण सट्ठी ॥३०॥
अडवीस जुआ तिनवइ संते वा पनरवंधणे तिसयं ।
वंधण सघाय गहो तणुसु सामन्नवण्णचऊ ॥३१॥
इय सतट्ठी वंधोदएय नय सम्म मीसया वन्धे ।
वन्धु दए सत्ताए वीस दुवीसट्ठ वन्नसयं ॥३२॥

वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रसादि द्विक; त्रिक, चतुष्क, (और) छक इत्यादि ।।इसके सिवाय और भी विभाषा आदि प्रकृति से संख्या के अन्त तक की प्रकृति समझ लेनी ॥२६॥ गति आदि तो अनुक्रम से चार, पांच, पांच, तीन, पांच॰ पांच, छे, छे, पांच, दो, पांच, आठ, चार (और) दो इस तरह उत्तर भेद पैंसठ हुवे ॥३०॥ (पूर्वोक्त) अट्ठावीस (और पैंसठ प्रकृति) को जोड़ देनेसे तेरानवे (प्रकृति) सत्ता में॰ अथवा (तेरानवे में) पन्द्रह वधनकी याने पांचके बदले पन्द्रह मिलानेसे एकसौ तीन प्रकति सत्ता में होती है ॥ शरीर में अर्थात शरीर के ग्रहणसे वधन सघातन ग्रहण हो जाता है सामान्य वर्ण चतुष्क का भी ग्रहण होता है ॥३१॥ यह सडसठ प्रकृति वध, उदय, उदीर्णा की (अपेक्षा समझनी) सम्यकत्व मोहनी मिश्रमोहनी बन्धमें नहीं (ली जाती) वंध॰उदय सत्ता में (अनुक्रम से) एक सौ बीस, एक सौ बाईस, एक सौ अठावन (प्रकृति होती है) ॥ ३२ ॥

निरयतिरिनरसुरगई इगबियतियचउपणिंदिजाईश्रो ।
श्रोराल विउव्वा हारग तेय कम्मण पण सरीरा ॥३३॥
बाहु रु पिट्ठि सिर उर उय रंग उवंग अंगुली पमुहा ।
सेसा अंगो वंगा पढम तणु तिगस्सु वंगाणि ॥३४॥
उरलाइ पुग्गलाण निबद्ध बज्झंतयाण संबंधं ।
जं कुणइ जउ समं तं बंधण मुरलाई तणुनामा ॥३५॥
जं संघाइ उरलाइ पुग्गले तणगणं व दंताली ।
तं संघायं बंधणमिव तणुनामेण पंचविहं ॥३६॥

नारकी तिर्यंच मनुष्य और देव (यह चार) गति एकेन्द्री, द्वि० त्री० चतु० और पचेन्द्री (यह पांच) जाति और औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस (और) कार्मण (यह) पांच शरीर कहलाते हैं ॥३३॥ भुजा, जघां पीठ, सिर, छाती, (और) पेट यह अंग है (और) अंगुली प्रमुख उपांग कहलाती है शेष अंगोपांग पहले के तीन शरीर में होते हैं ॥३४॥ जो (कर्म) लाखके समान पहिले बांधे हुए वर्तमानमें बांधते हुए औदारिकादि पुदुगलों का (आपस में) सम्बंध करता है उसको औदारिकादि बंधन (पांच) शरीर के नाम से (पांच प्रकार है) ॥३५॥ दंतालीके तृण समुह के (समान) जो औदारिकादि (शरीर के) पुदुगल्लों को इकट्ठा करता है वह संघातन (नाम कर्म) है यह बन्धन नाम कर्म की तरह शरीर नामकी अपेक्षा पांच प्रकार है ॥३६॥

ओराल विउव्वा हारयाणं सग तेअ कम्म जुत्ताणं ।
नवबंधणाणि इअर दु सहिआणि तिन्नी तेसिं च ॥३७॥
संघयणमट्ठिनिचओ तं छद्धा वज्जरिसहनारायं ।
तहय रिसहंनारायं नारायं अद्धनारायं ॥ ३८ ॥
कीलिय छेवट्ठं इह रिसहो पट्टो कीलिआवज्जं ।
उभओमक्कडबंधो नारायं इमुरालंगे ॥ ३९ ॥
समचउरंसं निग्गोह साइ खुज्जाइ वामणं हुंडं ।
संठाणा वण्णा किण्ह नील लोहिय हलिद्द सिआ ॥४०॥

अपने अपने तेजस कार्मण सयुक्त औदारिक, वैक्रिय, अहारक के नव बन्धन[1] होते हैं ॥ इतर तेजस कार्मण दोनों के सयोग से तीन[2] (बन्धन) और तेजस कार्मण स्व की अपेक्षा तीन[3] बन्धन ॥ ३७ ॥ हाडों की रचनाको संहनन कहते हैं ॥ छे प्रकार हैं वज्रऋषभनाराच उसी तरह ऋषभ नाराच, नाराच, अर्द्ध नाराच, कीलिका और छेवट्ठ ॥ यहां ऋषभका अर्थ पट्ट है और कीलिका काअर्थ खीला है ॥ नाराच का अर्थ दोनों तरफ मर्कट बंध है यह औदारिक मे होता है ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ समचतुरस्र न्यग्रोध, सादि कुब्ज वामन और हुंडक यहसंस्थान हैं ॥ कृष्ण नील, लाल, पीला और श्वेत यह वर्ण है ॥ ४० ॥

---

१ औदारिक औदारिक बंधन१ औदारिक तेजस बंधन२ औदारिक कार्मण बन्धन३ एव वैक्रिय और आहारक के भी तीन तीन भेद होने से नो भेद २औदारिक तेजस कार्मण बंधन, वैक्रिय तेजस कार्मण बंधन, आहारक तेजस कार्मण बन्धन यह तीन३ तेजस तेजस बंधन, तेजस कार्मण बन्धन, कार्मण कार्मण बंधन यह तीन एंव सर्व पन्द्रह बंधन हैं ।

सुरहि दुरही रसा पण तित्त कडु कसाय अंबिला महुरा ।
फासा गुरुलहु मिउ खर सी उण्ह सिणिद्ध रुक्खट्ठा ॥४१॥
नील कसिण दुगंध तित्त कडुअं गुरू खर रुक्ख ।
सीअं च असुह नवगं इक्कार सगं सुभं सेसं ॥४२॥
चउहगइव्वणुपुव्वी गइपुव्वि दुगं तिगं निआउ जुअं ।
पुव्वीउदओ वक्के सुह असुह वसुट्ठ विहग्गइ ॥४३॥
परघा उदया पाणी परेसिं बलिणंपि होइ दुद्धरिसो ।
ऊससिण लद्धिजुत्तो हवेइ ऊसास नाम वसा ॥ ४४ ॥
रविबिंबेउ जिअंग तावजुअं आयवाउ नउजलणे ।
जमुसिण फासस्स तहि लोहिय वएणस्स उदउत्ति ॥४५॥

सुरभि, दुरभि, (दोगंध) तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल और मधुरस पांच रस हैं (और) स्पर्श (आठ हैं) गुरु, लघु, मृदु, खर, शीत उष्ण स्निग्ध (और) रुक्ष है ॥ ४१ ॥ नील, कृष्ण, दुरभिगंध, तिक्त, कटु गुरु, खर, रुक्ष और शीत (यह) नौ अशुभ नवक हैं शेष ग्यारह प्रकृति शुभ है ॥ ४२ ॥ चारगति के (समान) आनुपूर्वीभी (चार) है ॥ गति और आनुपूर्वी (गति) द्विक (कहलाती) है अपनी अपनी आयुष्य युक्त होने से गति त्रिक (कहलाती) है आनुपूर्वी का उदय वक्र गति में होता है शुभ और अशुभ विहायोगति (दो प्रकार है) बैल (और) ऊंटवत् ॥४३॥ पराघात के उदयसे प्राणी दूसरे बलवान को भी अजय होता है उच्छ्वास नाम कर्म के उदयसे उच्छ्वास लब्धि संयुक्त होता है ॥४४॥ सूर्य मंडल के विषय में (रत्नादि पृथ्वी काय) जीवों का शरीर तापयुक्त होता है (उसको) आतप नाम का उदय है तत्र अग्निकाय में उष्ण स्पर्श और रक्तवर्ण का उदय है ॥ ४५ ॥

अणुसिण पयासरुवं जिअंगमुज्जो अए इहुज्जोआ।
जइ देवुत्तर विक्किय जोइस खज्जोअ माइव्व ॥ ४६ ॥
अगं नगुरु नलहुअं जायइ जीवस्स अगरुलहु उदया।
तित्थेण तिहुअणस्सवि पुज्जो से उदओ केवलिणो ॥ ४७ ॥
अंगो वंग निअमणं निम्माणं कुणइ सुत्तहार समं।
उवघाया उवहम्मइ सतणु अवयव लंबिगाईहिं ॥ ४८ ॥
बि ति चउ पणिदिअ तसा बायराओ बायरा जिआ थूला।
निअनिअ पज्जति जुआ पज्जत्ता लद्धि करणेहिं ॥ ४९ ॥

यहां उद्योत (नाम कर्मके उदयमे) जीवोंका शरीर शीत प्रकाशरूप उद्योत करता है (यथा) साधु, देवता के उत्तर वैक्रिय, ज्योतिषी और खद्योत-जुगनी कीडे की तरह ॥ ४६ ॥ अगुरु लघु (कर्म) के उदयसे जीवका शरीर न गुरु, न लघु होता है तीर्थंकर त्रिभुवनके भी पूज्य होते हैं। इसका उदय केवली को ही होता है ॥ ४७ ॥ सूत्रधार के समान निर्माण (नामकर्म) अंगोपांगों को नियमित याने योग्य स्थान व्यवस्थापन करता है, उपघात (नाम कर्म के उदयसे) अपने शरीर के अवयवपड जीभादिसे उपहत होता है ॥ ४८ ॥ त्रस (नाम कर्म के उदय) से द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होता है, (बादर नाम कर्म के उदयसे) अपनी अपनी पर्याप्तियां संयुक्त होती हैं, (वे पर्याप्त जीव) लब्धी और करण दो [१] प्रकारसे हैं, ॥ ४९ ॥

---

१ जो जीव स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण करके मरता है वह लब्धी पर्याप्ता अन्यथा मरे वह लब्धी अपर्याप्ता। करणपर्याप्ता इन्द्रिय पर्याप्ता को कहते है। जिसने आहार, शरीर, इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी करी है वह करण पर्याप्ता। जिसनेपूरी नहीं की है आगे करेगा वह करण अपर्याप्ता।

पत्ते अतणुपत्ते उदएण दन्त अट्ठिमाइ थिर ।
नाभुवरि सिराइ सुह सुभगाओ सव्वजण इट्ठो ॥ ५० ॥

सुसरा महुर सुहझुणी आइज्जा सव्वलोअगिज्झवओ ।
जसओ जसकित्तीओ थावरदसग विवज्जत्थ ॥ ५१ ॥

गोअ दुहुच्चनीअ कुलाल इव सुघड भु सलाईअ ।
विग्घ दाणे लाभे भोगुवभोगेसु वीरिए अ ॥ ५२ ॥

सिरि हरियसम एय जह पडिकूलेण तेण रायाई ।
न कुणइ दाणाईय एव विग्घेण जीवोवि ॥५३ ॥

प्रत्येक नामकर्म के उदयसे शरीर पृथक् पृथक् होता है, दांत हड्डी आदि थिर होते हैं उसे थिर नाम कहते हैं। नाभि ऊपर (अवयव) शुभ होते हैं (उसको) शुभ नाम कहते है। सौभाग्य नाम कर्मके उदयसे सब लोगों को ईष्ट लगता है ॥ ५० ॥ सुस्वर (नाम कर्मसे) मधुर ध्वनि होती है, आदेय (नाम कर्मसे) सब लोग वचनका आदर करते हैं। यश कीर्ति (नाम कर्म के उदय) से यश कीर्ति होती है। स्थावर दशक इससे (सबसे) विपरीत (अर्थ) वाला है ॥५१॥ गोत्र कर्म दो प्रकारका है ऊंच और नीच जैसे कुम्भार के बनाये अच्छे घट और मधु घट के समान। अन्तराय (कर्म पांच प्रकार है) दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ॥ ५२ ॥ यह (अन्तराय कर्म) (भंडारी के समान है जैसे भंडारी प्रतिकूल होने से राजादि दान वगैरह नहीं कर सकते इसी प्रकार अन्तराय कर्म के कारण जीव भी दान नहीं कर सकता ॥ ५३ ॥

पडिणीयत्तण निन्हव उवघाय पओस अंतराएणं।
अच्चा सायणयाए आवरण दुग जिओ जयइ ॥५४॥

गुरुभत्ति खंति करुणा वय जोग कसाय विजय दाणजुओ।
दृढ धम्माइ अज्जइ सायम सायं विवज्जयओ ॥५५॥

उम्मग्ग देसणा मग्ग नासणा देव दव्व हरणेहिं।
दन्सण मोहं जिण मुणि चेइय संघाइ पडिणीओ ॥५६॥

दुविहंपि चरण मोहं कसाय हासाई विसय विवसमणो।
वंधइ नरयाउ महारंभ परिग्गहरओ रुद्दो ॥५७॥

प्रत्यनीकत्व-अनिष्टा चार, अपलाप, विनाश, प्रद्वेष, अन्तराय और अति आशातना से जीव आवरण दुग ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ५४ ॥ गुरु भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, योग, कषाय का विजय, दान युक्त और दृढ़ धर्मादि से साता वेदनी को उपार्जन करता है और विपरीत पने से असाता वेदनी को उपार्जन करता है ॥ ५५ ॥ उनमार्ग का उपदेश, सत् मार्ग का विनाश और देव द्रव्य हरण से दर्शन मोहनीय कर्म बांधता है (तथा) जिन, मुनि, चैत्य और संघ के प्रत्यनीक पनेसे भी दर्शन मोहनीय कर्म बांधता है ॥ ५० ॥ दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय कर्म कषाय हास्यादि विषय के विवस होने से भी बांधता है महारम्भ परिग्रह में रक्त और रौद्र परिणाम से नरकायु बांधता है ॥ ५७ ॥

तिरियाउ गूढहियओ सढो ससल्लो तहा मणुस्साउ ।
पयईइ तणु कसाओ दाणरुई मज्झिम गुणोअ ॥५८॥

अविरयमाइ सुराउ बालतवो काम निज्जरो जयइ ।
सरलो अगार विल्लो सुहनाम अन्नहा असुह ॥५९॥
गुणपेही मयरहिओ अज्झयणज्झावणा रुइ निच्च ।
पकुणइ जिणाइ भत्तो उच्च यय इयरहाउ ॥ ६०॥
जिणपूयाविग्धकरो हिंसाइ परायणो जयइ निग्घ ।
इय कम्मविवागो य लिहिओ देविन्द सूरिहिं ॥६१॥

गुढ हृदय, शठ और सशल्य वाला तिर्यंचायु बांधे, तथा प्रकृति से अल्प कषायी, दान रुचि और मध्यम गुण वाला मनुष्यायु बांधे ॥ ५८ ॥ बालतप अकाम निर्जरा अविरतादि से देवायु उपार्जन करता है, सरल गौरव रहित पनेसे शुभ नामकर्म बांधता है। अन्यथा इससे विपरीत अशुभ नाम कर्म बांधता है ॥ ५९ ॥ गुण देखने वाला, मद रहित, पढ़ने पढाने में निरंतर रुचि वाला जिनेश्वरादि का भक्त उच्चगोत्र बांधे ॥६० ॥ जिनेन्द्र की पूजा में विघ्न करनेवाला हिंसादि में तत्पर अंतराय कर्म उपार्जन करे, इस तरह यह कर्म विपाक नामा ग्रन्थ श्री देवेन्द्रसूरिजी ने लिखा है ॥ ६१ ॥ इति ॥

कर्मोंकी मूल प्रकृति ८ उत्तर १५८ के नाम

मूल प्र० ८
१ ज्ञानवर्णीय कर्म
२ दर्शनावर्णीय कर्म
३ वेदनीय कर्म
४ मोहनीय कर्म
५ आयु कर्म
६ नाम कर्म
७ गोत्र कर्म
८ अन्तराय कर्म

ज्ञानावर्णीय ५
१ मति ज्ञानावर्णीय
२ श्रुत ज्ञाना०
३ अवधि ज्ञाना०
४ मनःपर्यवज्ञा०
५ केवल ज्ञाना०

दर्शनावर्णीय ६
१ चक्षु दर्शनाव०
२ अचक्षुदर्शना०
३ अवधि दर्श०
४ केवल दर्शना०
५ निद्रा
६ निद्रानिद्रा
७ प्रचला
८ प्रचला प्रचला
६ थणद्धी

वेदनीय २
१ सातावेदनीय
२ असातावे०

मोहनीय २८

दर्शन मोहनीय
१ सम्यक्त्व
२ मिश्र
३ मिथ्यात्व

सोलह कषाय चारित्र मोहनीय
४ अनन्तानुबंधी क्रोध
५ अनंतानुबंधी मान
६ ,, माया
७ ,, लोभ
८ अप्रत्याख्यानी क्रोध
६ ,, मान
१० ,, माया
११ लोभ
१२ प्रत्याख्यानी क्रोध
१३ ,, मान
१४ ,, माया
१५ ,, लोभ
१६ संज्वलन क्रोध
१७ ,, मान
१८ ,, माया
१६ ,, लोभ

नवनोकषाय।
२० हास्य
२१ रति
२२ अरति
२३ शोक
२४ भय
२५ जुगुप्सा
२६ पुरुषवेद
२७ स्त्रीवेद
२८ नपुंसकवेद

आयुष्य ४
१ देवायुः
२ मनुष्यायुः
३ तिर्यंचायु.
४ नरकायुः

नामकर्म १०३

गति ४
१ नरकगति
२ तिर्यंचगति
३ मनुष्यगति
४ देवगति
५ एकेन्द्रियजाति
६ द्वीन्द्रियजाति

७ त्रीन्द्रियजाति
८ चतुरिन्द्रिय ,,
९ पंचेन्द्रिय ,,
१० औदारिक शरीर
११ वैक्रिय ,,
१२ आहारक ,,
१३ तेजस ,,
१४ कारमण ,,
१५ औदारिक अंगोपांग ३
१६ वैक्रिय ,,
१७ आहारक ,,
१८ औदारिक औदारिक बंधन
१९ ,,तेजस बंधन
२० ,,कार्माण बंधन
२१ औ० तै० का० ,,
२२ वै० वै० बंधन
२३ वै० तै० बंधन
२४ वै० का० बंधन
२५ वै० तै० का बंधन
२६ आ० आ० बंधन
२७ आ० तै० बंधन
२८ आ० का० बंधन
२९ आ०तै०का०बंधन
३० तै तै० बंधन
३१ तै० का० बंधन

३२ का० का० बंधन
३३ औदारिक संघातन
३४ वैक्रिय
३५ आहारक ,,
३६ तेजस ,,
३७ कार्मण ,,
३८ वज्रऋषभनाराच संघयण
३९ ऋषभनाराच ,,
४० नाराच ,,
४१ अर्द्ध नाराच ,,
४२ कीलिका ,,
४३ छेवठ ,,
४४ समचतुरस्त्र संस्थान
४५ न्यग्रोध ,,
४६ सादि ,,
४७ वामन ,,
४८ कुब्ज ,,
४९ हुँड ,,
५० कृष्ण वर्ण
५१ नील ,,
५२ लाल ,,
५३ पीला ,,
५४ सफेद ,,
५५ सुरभिगंध
५६ दुरभिगंध

५७ तिक्त रस
५८ कटु ,,
५९ कषाय ,,
६० आम्ल ,,
६१ मधुर ,,
६२ कर्कश स्पर्श
६३ मृदु ,,
६४ गुरु ,,
६५ लघु ,,
६६ शीत ,,
६७ उष्ण ,,
६८ स्निग्ध ,,
६९ रुक्ष ,,
७० नरकानु पूर्वी
७१ तिर्यंचा ,,
७२ मनुष्य ,,
७३ देव ,,
७४ शुभविहायोगति
७५ अशुभवि० गति
७६ पराघातनाम
७७ उच्छ्वासनाम
७८ आतपनाम
७९ उद्योतनाम
८० अगुरुलघुनाम
८१ तीर्थंकरनाम
८२ निर्माणनाम
८३ उपघात नाम

(७६–८३: प्रत्ये० प्र०)

त्रस दशक	स्थावर दशक	गोत्र
८४ त्रसनाम	९४ स्थावरनाम	१ उच्च गोत्र
८५ बादरनाम	९५ सूक्ष्मनाम	२ नीच गोत्र
८६ पर्याप्तनाम	९६ अपर्याप्तनाम	
८७ प्रत्येकनाम	९७ साधारणनाम	**अंतराय ५**
८८ स्थिरनाम	९८ अस्थिरनाम	१ दानान्तराय
८९ शुभनाम	९९ अशुभनाम	२ लाभा० ,,
९० सौभाग्यनाम	१०० दुर्भगनाम	३ भोगा ,,
९१ सुस्वरनाम	१०१ दुस्वरनाम	४ उपभोगा ,,
९२ आदेयनाम	१०२ अनादेयनाम	५ वीर्या ,,
९३ यश कीर्तिनाम	१०३ अयशःकीर्ति	

५-९-२-२८-४-१०३-२ ५-कुल १५८ उत्तरप्रकृति,

इति श्री प्रथम कर्मग्रन्थ समाप्तम्

अथ कर्मस्तवनामा द्वितीय कर्मग्रन्थ



तह थुणिमो वीरजिणं जह गुणठाणेसु सयल कम्माइं ॥
ब धुदओदीरणया सत्ता पत्ताणि खविआणि ॥ १ ॥
मिच्छे सासण मीसे अविरय देसे पमत्त अपमत्ते ॥
निअट्टि अनिअट्टि सुहुमु वसमखीण सजोगि अजोगि गुणा॥२॥
अभिनव कम्मग्गहणं बंधो ओहेण तत्थ वीससयं ॥
तित्थयराहारगदुग वज्जं मिच्छंमि सत्तरसयं ॥ ३ ॥

जिस गुणस्थाने में बंध, उदय, उदीरणा और सत्ताको प्राप्त हुवे सभी कर्मोंका क्षय किया है। उन वीर भगवान की (हम) स्तुति करते हैं, ॥ १ ॥ मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र, अविरति, देशविरति, प्रमत्तसयत्त, अप्रमत्त सयत निवृत्ति, अनिवृत्ति, (बादर सपराय,) सूक्ष्म सपराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी (यह चौदह) गुणस्थानक है ॥ २ ॥ नये कर्मोंके ग्रहणको बंध कहते हैं वह सामान्यसे एक सो बीस + (प्रकृति) हैं, तिर्थंकर नाम, आहारक द्विक वर्जके एकसो सतरह (प्रकृतिका बंध) मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है ॥ ३ ॥

+ १५ बंधन ५ सघातन १६ वर्णादि १ सम्यक्त्व मोहनीय १ मिश्रमोहनिय एव ३८ प्रकृति बंधमें हीनसे ओघ १२० प्र० का बंध है। शेष सकेत परिभाषाम जानना।

निरयतिग जाइ थावरचउ हुण्डा यव छिवट्ठ नपु मिच्छं ॥
सोलंतो इगहिअसय मासणि तिरिथीण दुहगतिगं ॥ ४ ॥
अणमज्झागिइ संघयण चउ नि उज्जोअ कुखगइ त्थिति ।
पणवीसंतो मीसे चउसयरि दुआउअ अबंधा ॥ ५ ॥
सम्मे सगसयरी जिणाउबंधि वइर नरतिअ विअ कसाया ॥
उरलदुगंतो देसे सत्तट्ठी तिअकसायंत्तो ॥ ६ ॥
तेवट्ठि पमत्ते सोग अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं ॥
वुच्छिज्ज छच्च सत्तव नेइसुराउं जयानिट्ठं ॥ ७ ॥

नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंड संस्थान, आतप नाम, छेवट संघयण, नपुसक वेद और मिथ्यात्व मोहनीय (यह) सोलह प्रकृति वर्जके सास्वादन गु० में एकसो एक प्र० बांधे ॥ तीर्यंच त्रिक, थीणद्धित्रिक और दुर्भाग्यत्रिक ॥ ४ ॥ अनन्तानुबंधी चतुष्क, मध्य संस्थान चतुष्क, मध्य संघयण-चतुष्क, नीचगोत्र, उद्योतनाम, अशुभ विहायो गति, स्त्रीवेद (एवं) पचीस प्र० (को घटा दें) और दो आयुः (मनुष्य, देव) का यहां अबंध है (इस लिये) चोहत्तर प्र० मिश्र गु० में बांधे) ॥ ५ ॥ अविरति सम्यक्त्व दृष्टि गु० में जिन नाम, आयुष्य द्विक (मनुष्य, देव) का बंध होता है (इस लिये) सत्तत्तर प्र० बंध है ॥ वजरूषभनाराच संघयण, मनुष्यत्रिक, अप्रत्याख्यानी चौक, औदारिक द्विकका अन्त करके सडसठ प्र० देशव्रत्ति गु० में बांधे ॥ तीसरा (प्रत्याख्यानी कषायको वर्जके ॥ ६ ॥ तेसठ प्र० प्रमत गु० में बांधे ॥ शोक, अरति, अस्थिर द्विक, अयश, असाता (यह) छे (प्रकृति) विच्छेदहो (अथवा) देवायः प्राप्त करने पर या नष्ठ होने पर सात प्र० विच्छेद करे ॥ ७ ॥

गुणसट्ठि अप्पमत्तो सुराउबन्धंतु जइ इहागच्छे ॥
अन्नह अट्ठावण्णा ज आहारगदुगबंधे ॥ ८ ॥

अडवन्नमपुव्वाइमि निद्दुगंतो छपन्न पणभागे ॥
सुरदुग पणिंदि सुखगइ तसनव उरलविणुतणुवंगा ॥ ९ ॥

समचउर निमिण जिण वन्न अगुरुलहुचउ छलंसि तीसंतो ॥
चरमे छवीसबन्धो हास रई कुच्छ भय भेओ ॥ १० ॥

अनिअट्टिभागपणगे इगेगहीणो दुवीसविहबन्धो ॥
पुम संजलणचउण्ह कमेण छेओ सत्तरसुहुमे ॥ ११ ॥

अगर सुरायु बांधता हुआ अप्रमत्तगु० प्राप्त करे तो गुणसठ प्र० (को बांधे) अन्यथा अठावन प्र० बांधे क्योंकि यहां आहारक द्विकका बंध होता है ॥ ८ ॥ अपूर्व करण गु० (के पहिले भाग) में अट्ठावन प्र० (का बंध होता है) "और" निद्रा द्विक विच्छेद होनसे पांच भागों में छप्पन प्र० (का बंध होता है) छठे भाग में तीस प्र० का अन्त करे (यथा) देवद्विक, पंचेन्द्रि जाति, शुभ विहायोगति, त्रसनवक, औदारिक बिना शरीर ४, उपांग २, समचतुरस्र संस्थान, निर्माण नाम, जिन नाम, वर्ण चतुष्क, अगुरु लघु चतुष्क (के छेद होनेसे) चरम समय छाईस प्र० का बंध होता है ॥ हास्य, रति, दुगञ्छा और भयका नाश होनेपर ॥ ९ ॥ १० ॥ अनिवृत्ति गु० के पांच भागों में (जे पहिले भाग में) बाईस प्र० का बंध होता है ॥ पुरुषवेद संज्वल चतुष्कको अनुक्रमसे एकैक प्र० हीन करने पर सतरह प्र० का बंध सूक्ष्म संपराय गु० में होता है ॥ ११ ॥

चउदंसणु च्च जस नाणविग्घ दसगन्ति सोलसुच्छेओ ॥
तिस सायबंध छेओ सजोगिबंधंतु अणंतो अ ॥ १२ ॥
उदओ विवाग वेअण मुदीरण मपत्ति इह दुवीससयं ॥
सत्तरसयं मिच्छे मीस सम्म आहार जिणणु दया ॥ १३ ॥
सुहुम तिगायव मिच्छं मिच्छंतं सासणे इगारसयं ॥
निरयाणुपुव्वि णु दया अण थावर इग विगल अंतो ॥ १४ ॥

दर्शनावरणीय चतुष्क, उच्चगोत्र, यश नाम, ज्ञान तथा अन्तरायकी दश प्र० (यह) सोलह प्र० को विच्छेद होनेसे (उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी गु०) तीन गु० में सातावेदनी का बंध होता है और सयोगी गु० के अन्तसमय सातावेदनीका निरोध करके चौदमें गु० में अबंध होता है ॥ १२ ॥ बंध समाप्त।

विपाकको भोगना उदय कहलाता है. (विपाक पने) नहीं प्राप्तकी उदीरण होती है (परन्तु उदीरणाके लिये यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जो उदयमान कर्म है उसीकी उदीरणा होती है किन्तु अनुदयकी नहीं और उदयमान कर्म भी आवलिका प्रमाण शेष रहने पर उसकी उदीरणा रुक जाती है) यहां उदय (उदीरणायोग्य) एकसो बाईस प्र० है मीश्रमोहनी, सम्यक्त्व मो० आहारकद्विक और जिन नामका अनुदय होने से मिथ्यात्व गु० में एकसो सतरे प्र० उदय ॥ १३ ॥ सुक्ष्मत्रिक आतप, मिथ्यात्व-मोहनी मिथ्यात्व गु० में अंत होता है और नरकानुपूर्वी का अनुदय होनेसे सास्वादन गु० में एकसोग्यारह प्र० का उदयहोता है अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रियजाति और विकलेन्द्री ॥१४॥

बंध १२० प्रकृति गु० विवरण—

(१) मिथ्यात्व गु० में ११७—जिन नाम, आहारिक द्विक अबन्धक।

(२) सास्वादन गु० १०१—नरक ३, जाति ४, थावर ४, हुंड, आतप, छेवट्ठ, नपुंसक, मिथ्यात्व मो० एव १६

(३) मिश्र गु० ७४—तिर्यंच ३, थीणद्धि ३, दुर्भाग्य ३, अनन्तान० ४, मध्यसंस्थान ४, मध्यसंघ० ४, नीचगोत्र, उद्योत, अशुभवि०, स्त्रीवेद, मनुष्यायु, देवायु एव २७ विना

(४) अविरत गु० ७७—जिन नाम, मनुष्य देवायु, एव ३ अ० बांधे

(५) देश वि० गु० ६७—वज्रऋष०, मनुष्य त्रिक, अप्रत्याख्या० ४, आहा- रिक द्विक एव १०

(६) प्रमत्त स० गु० ६३—तीसरे कषाय की ४ विना

(७) अप्रमत्त गु० ५८-५९—शोक, अरती, अस्थिर २, अयश, असाता एव ६ आहारिक द्विक बांधे तो ५९ और देवायु बांधे तो ५८

(८) अपूर्वक० ५६—निद्रा २, देव २, पंचेन्द्री, शुभवि, त्रस, औदा, विना, श्वास, समचौरस संस्थान निर्माण, जिन, वर्ण, अगुरुलघु एवं - विना

(९) अनिवृत्ति गु० १८—हास्य, रति, दुगंछ, भय, पुरुषवेद, संज्वल एव ८ विना

(१०) सूक्ष्मस० गु० ७ संज्वल लोभ १ विना

उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगी में एक सातावे० का बंध, ज्ञान,

मीसे णपुव्वी णुदया मीसोदएण मीसंतो ॥
चउसयम जए सम्मा णु पुव्वोखेवा बिअकसाया १५
मणुतिरिणुपुव्वि विउवट्ठ दुहग अणाइज्जदुग सतर छेओ ॥
सगसी इ देसि तिरिगइआउ निउज्जोअ तिकसाया ॥१६॥
अट्ठच्छेओ इगसी पमत्ति आहारजुअल पक्खेवा ॥
थीणतिगाहारग दुग छेओ छस्सयरि अपमत्ते ॥१७॥
सम्मतंतिमसंघयण तिअगच्छेओबिसत्तरि अपूव्वे ॥
हासाइछक्क अन्तो छसट्ठि अनिअट्टि वेअतिग ॥१८॥

आनुपूर्वीतीन (म० दे० ति०) का अनुदय होने से मीश्र गु० सो प्र० का उदय होता है। क्योंकि यहा मिश्र मो० उदय है। इस लिये १०० और मिश्रमोहनीय का क्षय तथा सम्यक्त्व मोहनीय का और चार आनुपूर्वी के उदय होनेसे अविरती गु० में एक सौ चार प्र० का उदय होता है ॥ अप्रत्याख्यानी चतुष्क ॥१५॥ मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिया ष्टक, दुर्भाग्य नाम, अनादेयद्विक (यह) सतरह प्र० विच्छेद होने से देश विरती गु० सतासी प्र० का उदय होता है ॥ तिर्यंच गति, तिर्यंचायु नीच गोत्र, उद्योत नाम और प्रत्याख्यानी कषाय ॥१६ यह आठ प्र० के विच्छेद और आहारक द्विक के उदय होने से इक्यासी प्र० का उदय प्रमत गु० में होता है ॥ थीणद्धी त्रिक, आहारकद्विक के अनुदय होनेसे छेहत्तर प्र० का उदय अप्रमत गु० में होता है ॥१७॥ सम्यक्त्व मोहनीय और अन्तिम के तीन संघयण क उदयविच्छेद होने से बहत्तर प्र० का उदय अपूर्व का करण गु० में होता है ॥ हास्यादि छे प्र०का उदय छेदचित्र होने से छासठ प्र० का उदय अनिवृति गु० में होता है ॥१८॥

संजलणतिगछच्छेओ सट्ठि सुहुमंमि तुरिअलोभंतो ॥
उवसंत गुणे गुणसट्ठि रिसह नाराय दुग अन्तो ॥ १९ ॥
सगवन्न खीणदुचरिमि निद्द दुगन्तो अचरिमि पणवन्ना ॥
नाणंतराय दंसण चउ छेओ सजोगि बायाला ॥ २० ॥
तित्थुदया उरलाथिर खगइदुग परित्ततिग छ संठाणा ॥
अगरुलहु वन्नचउ निमिण तेअकम्माइ संघयणं ॥ २१ ॥
दूसर सूसर साया साए ग य रंच तीस वुच्छेओ ॥
बारस अजोगि सुभगा इज्जजसन्नयरं वेअणिअं ॥ २२ ॥

संज्वल त्रिक (यह) छे प्र० को वर्जके साठ प्र० का उदय सूक्ष्म संपराय गु० में होता है ॥ चोथे लोभ के अनुदय होने से उनसठ प्र० का उदय उपशान्त मोह गु० मेंहोता है ॥ रुषभनाराचद्विकका अन्त होने से ॥१६॥ सत्तावन प्र० काउदय क्षीणमोह गु० के अंतिम समयके पूर्व समय तक होता है और निद्रा द्विक के क्षय होने से क्षीण मोह गु० के अंत समय पचपन प्र० का उदय होता है ॥ ज्ञानावरणीय पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी चार के क्षय होनेसे ४२ बयालीस प्र० क उदय सयोगी गु० में होता है ॥२०॥ क्योंकि यहां तीर्थकर नामका उदय होता है इसलिये ४२ कही ॥ औदारिक द्विक, अस्थिर द्विक, खगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान छे, अगुरुलघु चतुष्क, वर्णचतुष्क, निर्माण नाम, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रथम संघयण ॥२१॥ सुस्वर, दुस्वर और शाता अशाता में का एक यह तीस प्र० के क्षय होनेसे बारह प्र० का उदय अयोगी गु० में होता है ॥ सौभाग्य नाम,आदेय नाम, यशः नाम, साता असाता में से एक ॥ २२ ॥

उदय १२२ प्रकृति गुण विवरण

(१) मिथ्यात्व गु० ११७ सम्यक्त्व$_1$, मिश्रमो०$_1$, आहारिक$_2$, जिन$_1$ (अनुदय है)

(२) सास्वादन गु० १११ आतप$_1$, मिथ्यात्वमो०$_1$, नरकानुपू०$_1$, सूक्ष्म$_3$ एवं ६,

(३) मिश्र गु० १०० अनंतान०$_4$, स्थावर, एके$_0$ द्री, विकले$_3$ द्री, अनुपू$_3$ ३स दे वी (यहां मिश्रमो० उदय) ।

(४) अविरत० गु० १०४ मिश्रमो० क्षय, सम्यक्त्वमो० चार अनु०$_4$ का उदय,

(५) देशवि० गु० ८७ अप्रत्या०$_4$, मनु०$_0$ तिर्य० अनुपू०, वैक्रिय$_8$, दुर्भा०, अनादेय०$_2$

(६) प्रमत० गु० ८१–तिर्यंचगति$_0$, अनुपू०$_0$, नीच, उद्योत, प्रत्याख्या०$_4$ (आहारिद्विक उदय)

(७) अप्रमत० गु० ७६ थिणद्धि$_3$, आहारक$_2$ (एवं ५ विच्छेद)

(८) अपूर्वक० गु० ७२–सम्यक्त्वमो०$_1$ अंतिम$_3$ संघयण (एवं ४ वि०)

(९) अनिवृत्ति बा० गु० ६६–हास्यषट्क$_6$

(१०) सूक्ष्म सं० गु० ६०–वेदत्रिक$_3$ संज्वलत्रिक$_3$,

(११) उपशांतमो० गु० ५७–संज्वललोभो

(१२) क्षीणमोह० गु० ५५–ऋषभना० द्विक$_2$, निद्राद्विक$_2$,

(१३) सयोगी गु० ४२–ज्ञाना०$_5$, दर्शनाय०$_4$, अंतराय$_5$ (जिननाम उदय)

(१४) अयोगी गु० १२–औदारि०$_7$ अस्थिर$_2$, खगति$_2$, प्रत्येक$_3$, संस्थान$_6$, अगुरुलघु$_4$, वर्ण$_4$, निर्माण$_1$ तेजस$_1$, कार्मण$_1$, प्रथम संघ०$_1$, सुस्वर$_1$, दुस्वर$_1$, साता असाता$_1$, अ तमनय०, सौभाग्य$_1$, आदेय$_1$, यश$_1$, र ना$_1$ त्रस, पंचेंद्री, मनुष्यायु, गति, जिननाम, गोत्र ।

सत्ता कम्माणठिइ बंधाइ लद्ध अत्तलाभाणं ॥

संते अडयाल सयं जा उवसमु वि जिणु विअतइए ॥२५॥

अपुव्वाइ चउक्के अण तिरिनिरयाउ विणु वियाल सयं ॥

सम्माइ चउसु सत्तग खयंमि इगचत्त सगमहत्ता ॥२६॥

खवगंतु पप्प चउसुवि पणयालं निरयतिरि सुरउ विणा ॥

सत्तग विणु अडतीसं जा अनिअट्टि पढम भागो ॥२७॥

बंधादि से आत्मस्वरुप पने प्राप्त किया है (ऐसे) कर्मों की स्थिति को सत्ता (कहते हैं) ॥ सत्ता मे १४८ प्र० यावत् उपशान्त मोह गु० तक होती हैं ॥ जिन नाम बिना दूसरे और तीसरे गु० में १४७ प्र० की सत्ता होती है ॥ २५ ॥ अपूर्व करणादि चार गु० में अनन्तानुबंधी चतुष्क, मनुष्य और तिर्यंचायु बिना एकसौ बयालिस प्र० (की सत्ता देवायु बाँधे उपशम श्रेणी प्राप्तको होती है) अथवा सम्यकत्वादि चार गु० में दर्शन सप्तक क्षय होनेसे १४१ प्र० (की सत्ता श्रेणी रहित) क्षायक सम्यग् दृष्टि को होती है ॥ २६ ॥ जो जीव क्षपक श्रेणी कर तद्भव मोक्ष जाने वाला है वह नारकी तिर्यंच और देव वर्ज के एकसौ पैंतालीस प्र० की सत्ता चोथेसे सातवें गु० तक होतीहै और दर्शन सप्तक विना एकसौ अडतीस प्र० की सत्ता यावत् अनिवृति गु० के पहिले भाग तक होती है ॥२७॥

थावर तिरि निरयायव दुग थिण तिगेग विगल साहार ॥
सोलखओ दुवीस मय बिअसि बिअ तिअ कसायतो ॥२८॥

तइ आईसु चउदस तेर बार छपण चउतिहियमय कमसो ॥
नपुइत्थि हास छग पुम तुरिअ कोह मयमायखओ ॥ २९ ॥

सुहुमि दुसय लोहतो खीण दुचरि मेगसय दुनिदखओ ॥
ननवइ चरम समए चउदसण नाण विग्घतो ॥ ३० ॥

पणसीइ सजोगि अजोगी दुचरि मे देव खगइ गध दुग ॥
फासट्टवन्न रस तणु बधण सघाय पण पण निमिण ॥ ३१॥

स्थावर द्विक, तिर्यंच द्विक, नरक द्विक, आतप द्विक, थी णाद्रि त्रिक, एकेन्द्रियजाति, विगलेन्द्रिय (और) साधारण (इन) सोलह प्र के क्षय होनेसे एक सौ बाईस प्र की सत्ता दूजे भाग में होती है ॥ दूसरे और तीसरे कषाय के क्षय होन पर ११४-११३ ११२-१०६-१०५ १०४ १०३ की सत्ता तीजे आदि भाग में होती है क्योंकि अनुक्रमसे नपुंसक वेद, स्त्री वेद, हास्यषट्क, पुरुष वेद, सज्वल क्रोध, मान, मायाका क्षय होता है ॥ २९ ॥ सुक्ष्मसपराय गु० में एकसो दो० प्र० (कीसत्ता) ॥ सज्वल लोभ के० क्षय होनेसे एक सो एक प्र०की सत्ता (क्षीण मोह गु० के) द्विचरम समय (तकरहती है) । (और) निद्राद्विक के क्षय होने से (क्षीण मोह गु० के) अन्त समय निनानवे प्र० की सत्ता होती है।' दर्शनावरणीय चार, ज्ञानावरणीय पाच (और) अन्तरायाच (के क्षय होनेसे) पचासी प्र० (की सत्ता) सयोगी गु० में होती है ॥ ३१ ॥

संघयण अथिर संठण छक्क अगुरुलहु चउ अपज्जपं ॥
सायंव असायवा परित्तु वंग तिग सुसर निअं ॥ ३२ ॥

बिसयरी खओअ चरिमे तेरस मणुअ तस तिगजसाइज्जं ॥
सुभग जिणुच्च पणिंदिअ साया माए गयर छेओ ॥ ३३ ॥

नर अणुपुव्वि विणावा वारस चरिम समयंमि जोखविउ ॥
पत्तो सिद्धिं देविंद वंदिअं नमह तंवीरं ॥३४ ॥ सत्तासम्मता

अयोगि गु० के द्वि चरम समय तक पचासी प्र० की सत्ता रहती है तत् समय देवद्विक, खगतिद्विक, गन्धद्विक,, स्पर्शाष्ठक, वर्णपांच, रसपांच शरीर पांच,संघयणछे, अस्थिरछे संस्थान छे,अगुरुलघु चतुष्क, पर्याप्तना म,शाता अशातामें की एक प्रत्येकत्रिक, उपांगत्रिक, सुस्वर नाम और नीच गोत्र ॥३२॥ (यह) वहोत्तर प्र० के क्षय होने से (आयोगी गु० के) चरम समय तेरह प्र० की सत्ता रहती है ॥ मनुष्य त्रिक, त्रसत्रिक, यशः नाम, आदेय नाम, शुभ नाम, जिन नाम, उच्च गोत्र, पचेन्द्रिय जाति, शाता अशाता में की एवं एक १३ प्र० क्षय करे (अथवा मतांतरे मनुष्यानुपूर्वि बिना वारह प्र० का चरम समय जिन्होंने क्षय करके सिद्धपद को प्राप्त किया है उन देवेन्द्रोंसे वदनीय वीर भगवान को नमस्कार हो ॥३३॥३४॥

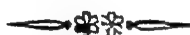
इति सत्ता अधिकार.

卐 ——❀—— 卐

गुणस्थान		सत्ता प्र०	उपशमश्रेणी	क्षपक श्रेणी
[illegible]		१३८		
मिथ्यात्व		१४८		
सास्वादन		१४७		
मिश्र		१४७		
अविरति		१४८	१४१	[illegible]
देश विरति		१४८	१४१	[illegible]
प्रमत्त		१४८	१४१	[illegible]
अप्रमत्त		१४८	१४१	[illegible]
अपूर्व करण		१४८	१३९	१३८
अनिवृत्ति करण	१	१४८	१३९	१३८
	२	"	"	१२२
	३	"	"	११४
	४	"	"	११३
	५	"	"	११२
	६	"	"	१०६
	७	"	"	१०५
	८	"	"	१०४
	९	"	"	१०३
सूक्ष्म स		[illegible]	१३९	१०२ १०१
उपशांत मो		[illegible]	१३९	
क्षीण मोह		[illegible]		१०१ [illegible]
सयोगी		[illegible]		[illegible]
अयोगी				

॥ वंदे वीरम् ॥

श्री बंधस्वामित्वनामा तृतीय कर्मग्रन्थ



बंधविहाण विमुक्कं वंदिय सिरि वद्धमाण जिण चंदं ॥
गइ आइसु वुच्छं समासओ बंध सामित्तं ॥ १ ॥

गइ इंदिएय काए जोए वेए कसाय नाणेय ॥
संयम दंसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥ २ ॥

जिण सुरवेउवाहारदु देवाउय निरय सुहुम विगल तिगं ॥
एगिंदि थावरा यव नपु मिच्छ हुंड छेवट्ठं ॥ ३ ॥

कर्मबन्ध के विधानसे रहित चन्द्रमा के समान सौम्य ऐसे श्री वर्द्धमान जिनेश्वर को नमस्कार करके गति आदि (मार्गणा) के विषे संक्षेपसे बन्द स्वामीत्वको कहूँगा ॥ १ ॥ गति ४, इन्द्रिय ५, काय ६ योग ३ वेद ३ कषाय ४ ज्ञान ८ संयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६ भव्व २ सम्यक्त्व ६ संज्ञी २ आहारी २ यह ६२ मार्गणा ॥ २ ॥ जिन नाम, सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारक द्विक, देवायु:, नारकीत्रिक, सुक्ष्मत्रिक, विकलेन्द्रियत्रिक एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम, नपुंसक वेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडसंस्थान छेवट्ट संघयण ॥ ३ ॥

अण मज्झा गिइ संघयण कुखगइ निय इत्थि दुहग थीण तिग ॥
उज्जोअ तिरिदुग तिरि नराउ नर उरलदुग रिसह ॥ ४ ॥
सुरइ गुण वीस वज्ज इग सउ ओहेण बंधहि निरया ॥
तित्थ विणा मिच्छि सय सासणि नपु चउ विणा छनुई ॥५॥
विणु अण छवीस मीसे बिसयरि सम्मंमि जिण नराउ जुआ ॥
इअ रयणाइस्सु भंगो पंकाइसु तित्थयर हीणो ॥ ६ ॥
अजिण मणु आउ ओहे सत्तमिए नरदुगुच्च विणु मिच्छे ॥
इग नवइ सासणे तिरि आउ नपु स चउ वज्ज ॥ ७ ॥

अनन्तानुबन्धि चतुष्क, मध्य संस्थान चार, मध्य संघयण चार, अशुभ विहायो गति, नीच गोत्र, स्त्री वेद, दुर्भाग्यत्रिक, थीणद्धित्रिक, उद्योत नाम, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, और वज्रऋषभ नाराच संघयण (यह ५५ प्र० परिभाषा में आगे काम आवेगी जैसे अगली गाथामें सुरादि १६ प्र० कही है वह सुरद्विकसे आतपनाम तक १६ समझना इस तरह अन्य जगह भी ॥३॥ ४॥ सुरादि १६ प्र० वर्जके एकसोएक ओघे नारकी बांधते हैं ॥ तिर्थंकर नाम बिना मिथ्यात्व गु० एकसो प्र० बांधे ॥ नपुंसक चतुष्क बिना छयानवे प्र० सास्वादन गु० मे बांधे ॥ अनन्तानुबन्धी २६ बिना मिश्र गु० सत्तर प्र० बांधे ॥ जिन नाम और मनुष्यायु सहित बहत्तर प्र० अविरति सम्य० गु० में बांधे ॥ इस प्रकार (बन्ध स्वामित्व) रत्न प्रभादि तीन नारकी में और पंकप्रभादि (तीन नारकी में उक्त प्रकृतियों में से) तीर्थंकर नाम, हीन करके कहना ॥ ६ ॥ जिननाम और मनुष्यायु बिना ९९ प्र० ओघे सातमी नारकी में बांधे ॥ मनुष्य द्विक और उच्च गोत्र बिना ९६ प्र० मिथ्यात्व गु० में बांधे तीर्यंचायु और नपुंसक चतुष्क बिना ९१ प्र० सास्वादन गु० में बांधे ॥ ७॥

अण चउवीस विरहिया सनर दुगुच्चाय सयरि मीस दुगे ॥
सत्तर सओ ओहि मिच्छे, पज्ज तिरिआ विणु जिणाहारं ॥८॥
विणु निरयंसोल सासणि सुराउ अण एगतीस विणु मीसे ॥
ससुराउ सयरि सम्मे वीअ कसाए विणा देसे ॥ ९ ॥
इय चउगुणे सुवि नरा परमजया सजिण ओहु देसाइ ॥
जिण इक्कारस हीणं नवसय अपज्जत्त तिरिअनरा ॥ १०॥
निरयव्व सुरा नवरं ओहे मिच्छे इगिंदि तिग सहिआ ॥
कप्प दुगे विअ एवं जिण हीणो जोइ भवण वणे ॥ ११ ॥

अनन्तानुबन्धी २४ प्र० विना और मनुष्यद्विक तथा ऊंच गोत्र सहित ७० प्र० मिश्र और अविरति गु० में सातमी नारकी-वाले बांधे॥ जिन नाम और आहारकद्रिक विना ११७ प्र० पर्याप्ता तिर्यंच ओघे तथा मिथ्यात्व गु० में बांधे॥ ८ ॥ नरकादि १६ प्र० विना १०१ प्र० सास्वादन गु० में बांधे॥ ८ ॥ नरकादि १६ प्र० विना १०१ प्र० सास्वादन गु० में बांधे॥ देवायुः और अनन्तानुबन्धो ३१ विना ६९ प्र० मिश्र गु० में बांधे॥ देवायुः सहित ७० प्र० अविरती सम्य० गु० में बांधे॥ दूजी कषाय वर्जके ६६ प्र० देशविरति गु० तिर्यंच पर्याप्ता बांधे॥ ९ ॥ ऐसे पर्याप्ता तिर्यंचकी माफिक चार गुणस्थानमें मनुष्य भी समझना परन्तु अविरति सम्य० गु० में जिन नाम सहित ७१ प्र० का बंध कहना ॥ (शेष) विरतादि १० गु० में ओघे कर्मस्तव की माफिक कहना॥ जिनादि ११ प्र० हीन करनेसे १०९ प्र० का बंध अपर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यको होता है॥ १ ॥ नारकी की तरह देवता का भी बंध स्वामीत्व कहना, परन्तु इतना विशेष है कि ओघे और मिथ्यात्वगु० मे देवता एकेंद्रियत्रिक सहित बांधे। पहिले और दूसरे देवलोकमें भी इसी तरह। ज्योतिषी और भुवनपति में जिन नाम विना शेष देवताओं की तरह समझना॥ ११ ॥

रयणुव्वसया कुमाराइ आणायाइ उज्जोय चउरहिया ॥
अपज्ज तिरिअव्व नवसयमिगिंदि पुढविजलतरु विगले ॥१२॥
छनवइ सासणि विणु सुहम तेर केइ पुण बिंति चउनवइ ॥
तिरिअ नरा उहिं विणा तणु पज्जत्ति न जंति जओ ॥ १३ ॥
ओहु, पणिंदि तसे गइ तसे जिणिकार नरति गुच्च विणा ॥
मण वय जोगे ओहो उरले नरभगु 'तम्मिस्से ॥ १४ ॥
आहार छग विणोहे चउदससउ मिच्छि जिण पणग हीण ॥
सासणि चउनवइ विणा तिरिअ नराउ सुहुमतेर ॥ १५ ॥

सनत्कुमार देवलोकसे यावत् आठवें सहस्त्रार देवलोक तक रत्नप्रभा नारकी कि परे बंध स्वामीत्व समझना ॥ आनत वगैरह शेष देवोंमें उद्योत चतुष्क विना बंध स्वामीत्व कहना ॥ अपर्याप्त तिर्यंचकी तरह १०६ प्र० का बन्ध एकेंद्रिय जाति, पृथ्वीकाय अपकाय, वनस्पतिकाय और विकलेंद्रिय में मिथ्यात्व गु० में कहना ॥ १२ ॥ सास्वादन गु० मे सुक्ष्मादि तेरह प्र० विना ९६ प्र का बन्ध एकेंद्रियादि को होता है। कोई आचार्य तिर्यंच और मनुष्य आयु विना ९४ प्र० का बन्ध कहते हैं। क्यों कि वे इस गु० म शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते ॥ १३ ॥ पचेन्द्रिय जाति और त्रस कायमें कर्मस्तव आघ बन्धकी तरह कहना। गति त्रसमें जिन एकादश, मनुष्यत्रिक और ऊंच गोत्र विना १०५ प्र० का बन्ध कहना ॥ मनयाग, वचनयोग और औदारिक काय योगमें कर्मस्तवकी तरह गु० का बन्ध कहना ॥ औदारिक मिश्र काय योगमें ॥ १४ ॥ आहारकादि छे प्र० वर्जके ११४ प्र० का ओघे बंध होता है ॥ मिथ्यात्व गु० में जिन पचक हीन होने से १०९ प्र० का बन्ध होता है ॥ सास्वादन गु०मे तिर्यंचायु, मनुष्यायु और सुक्ष्मादि तेरह प्र० विना ९४ प्र० का बन्ध होता है ॥ १५ ॥

अण चउवीसाइ विणा जिण पण जुअ सम्मि जोगिणो सायं ॥
विणु तिरिनराउ कम्मेवि एवं माहार दुगि ओहो ॥ १६ ॥
सुर ओहो वेउव्वे तिरिअ नराउ रहिओ अ तंम्मिसे ॥
वेअतिगा इम विअ तिअ कसाय नव दु चउ पंच गुणा ॥१७॥
संजलतिगे नव दस लोहे चउ अजइ दुति अनाण तिगे ॥
वारस अचक्खु चक्खुसु पढमा अहखाय चरिमचउ ॥ १८
मणनाणि सग जयाइ समइ अच्छेअ चउ दुन्नि परिहारे ॥
केलदुगि दो चरिमा जयाइ नव मइसु ओहिदुगे ॥१९॥

अनन्तानुवन्धी चौवीश बिना और जिन पंचक सहित ७५ प्र० सम्यक्त्व दृष्टी बांधे ॥ सयागी गुणास्थानमें औदारिक मिश्र वाला एक साता बांधे ॥ कार्मण काय योग तिर्यचायुः मनुष्यायुः वर्ज के शेष औदारिक मिश्रवत् ॥ आहारक द्विक वन्धवत् ओघे ॥ १६ ॥ देवगति के ओघ वन्धवत वैक्रिय शरीर बन्ध स्वामित्व और वैक्रिय मिश्रका तिर्यच, मनुष्यायुः विना ओघे देवगतिवत समझना ॥ वेदत्रिकमें नव गु० ॥ पहिला कषाय में दो गु०, दूसरे कषाय में चार गु०. तीसरे कषाय में पांच गु०, होते है ॥ १७ ॥ संज्वल के क्रोध, मान, माया मे नव गु० और लोभ में दश गु० होते है। वन्ध कर्मस्तवकी तरह ॥ अविरति चरित्र मे चार गु० अज्ञानत्रिकमें दो या तीन गु०, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन मे बारह गु०, यथाख्यात चारित्र में अन्त के चार गु० होते है। बन्ध अपने अपने गु० का कर्मस्तवकी तरह कहदेना ॥ १८ ॥ मनः पर्यव ज्ञान में सात गु० सामायिक और छेदोपस्थापनीय चा० में चार गु०, परिहार विशुद्धिमें दो गु०, केवलद्रिकमें दो गु० और मति ज्ञान, श्रुति ज्ञान, अवधिद्विकमे नव गु० होते हैं। बंध स्व स्व गु० आश्री ओघवत बंध कहना ॥ १९ ॥

अड उवसमि चउ वेअगि खइए इक्कार मिच्छतिगिदेसे ॥
सुहुमि सठाणं तेरस आहारगि निअ निअ गुणोहो ॥ २० ॥
परमुवसमिवट्टंता आउ न बंधंति तेण अजय गुणे ॥
देव मणु आउहीणो देसाइसु पुण सुराउ विणा ॥ २१ ॥
ओहे अट्ठार सयं आहार दुगूण माइलेस तिगे ॥
तं तित्थोणं मिच्छे साणाइसु सव्वहिं ओहो ॥ २२ ॥
तेउ निरय नवूणा उज्जोअ चउ निरय बार विणु सुक्का ॥
विणु निरय बार पम्हा अजिणाहारा इमामिच्छे ॥ २३ ॥

उपशम सम्यक्त्व आठ गु०, वेदक सम्य० चार गु०, क्षायिक सम्य० इग्यारह गु०, मिथ्यात्वत्रिक याने मिथ्यात्व, सास्वादन और मिश्र यह मिथ्यात्वत्रिक, देश विरतो और सुक्ष्म संपराय अपना २ एकेक गु० होता है। आहारिक में तेरह गु० होते हैं। बन्ध ओघ की तरह कहदेना ॥ २० ॥ परन्तु उपशम सम्यक्त्व में वर्तता हुवा जीव आयुष्य नहीं बांधता, इसलिये अविरत सम्यक्त्व दृष्टि गु० में देवायु मनुष्यायु छोडके अन्य प्रकृतिको बांधे और देश विरतादि गु० में देवायु वर्जके बांधे ॥ २१ ॥ आहारकद्विक वर्जके ११८ प्र० का बन्ध ओघे प्रथम की तीन लेश्याओं में होता है ॥ मिथ्यात्व गु० में जिन नाम वर्जके ११७ प्र० का बन्ध होता है शेष सास्वादनादि गु० में ओघवत ॥ २२ ॥ तेजो लेश्यामें नरकादि ९ प्र० विना १११ प्र० का बन्ध होता है ॥ उद्योत चतुष्क, नरकादि १२ प्र० विना १०४ प्र० का बन्ध शुक्ल लेश्यामें होता है ॥ और नरकादि १२ प्र० विना १०८ प्र० का बन्ध पद्म लेश्या में होता है ॥ तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक वर्जके मिथ्यात्व गु० में तीनों लेश्याओंका १२ ३२ बन्ध जानना ॥ २३ ॥

सव्व गुण भव्व सन्निसु ओहु अभव्वा असन्नि मिच्छि समा ॥
सासणि असन्नि सन्निव्व कम्मण भंगो अणाहारे ॥२४॥
तिसु दुसु सुक्काइ गुणा चउ सग तेरत्ति बंध सामित्तं ॥
देविंदसूरि रइअं नेअं कम्मत्थयं सोउं ॥ २५ ॥

भव्य और संज्ञीमें सर्व गु० और बंध कर्मस्तववत ॥ अभव्य और असंज्ञीको, मिथ्यात्व गु० समान बंध होता है ॥ असंज्ञी को सास्वादन गु० में बंध संज्ञीवत कहना ॥ अनाहारक में कार्मण कायवत बंध कहना ॥ २४ ॥ तीन❀ लेश्यामें प्रथम के चार गु० हैं. दो लेश्यामें सात गु० हैं. और शुक्ल लेश्यामें तेरह गु० होते हैं. इस तरह बंध स्वामित्व नामक कर्मग्रन्थ श्री देवेन्द्रसूरी ने रचा है यह ग्रन्थ कर्मस्तव नामा दूसरे कर्मग्रन्थ को समझ कर अध्ययन करना चाहिये ॥ २५ ॥

इति बंध स्वामित्व नामक तीसरा कर्मग्रंथ

॥ समाप्तम् ॥



❀ यहमत पंचसंग्रह १-३० और प्राचीन बंध स्वामित्व गा० ४० का है।

मार्गणा	गुण०	ओघ बंध	१ मि०	२ सा०	३ मि०	४ अ०	५ दे०	६ प्र०	७ अ०	८ अ०	९ अ०	१० सू०	११ उ०	१२ क्षी०	१३ स०	१४ अ०
नरकगति, रत्नप्रभादि ३	४	१०१	१००	९६	७०	७२										
पंकप्रभादि ३	४	१००	१००	९६	७०	७१										
तम तमप्रभा	४	९९	९६	९१	७०	७१										
तिर्यंचपर्याप्ता	५	११७	११७	१०१	६९	७०	६६									
तिर्यंच अप०	१	१०९	१०९													
मनुष्यपर्याप्ता, औदारिक का०	१४	१२०	११७	१०१	६९	७१	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
मनुष्य अपर्याप्ता	१	१०९	१०९													
देवगति, सौधर्म, ईशान, वैक्रिय ०	४	१०४	१०३	९६	७०	७२										
भ० ज्यो० ज्यो०	४	१०३	१०३	९६	७०	७१										
सनत्० से ६ देव,	४	१०१	१००	९६	७०	७२										
आनत से ९ ग्रै०	४	९७	९६	९६	७०	७२										
अनुत्तर	१	७२				७२										
एके द्वि त्रि० चौ पृथ्वी अप वन	२	१०९	१०९	९६ ९४												
पंचेंद्रि०त्रस मन० वचन, चक्षु०	१४	१२०	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
१४ १२ १६ १३ १२																
अचक्षु, शुक्ल, ले, भव्य, संज्ञी, आहा०																
१२ १३ १४ १४ १३																

तेऊ० वाउ	१	१०५	१०५												
औदारिकमिश्र	४	११४	१०६	९४		७५									१
वैक्रियमिश्र	३	१०२	१०१	९४		७५									
आहारककाय, आहा० मिश्र०	१	६३						६३							
कार्मणकाय	४	११२	१०७	९४		७५									१
स्त्री, पुरुष, नपुसंकवेद, सज्वल ३	९	१२०	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२				
अनंतानुबधी ४ असंज्ञी,	२	११७	११७	१०१											
अप्रत्याख्यानी ४ असंयत कृष्णादि ३	४	११८	११७	१०१	७४	७७									
प्रत्याख्यानी ४	५	११८	११७	१०१	७४	७७	६७								
संज्वललोभ १	१०	१२०	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७			
मति, श्रुति, अवधिज्ञान अ० दर्शन०	९	७९				७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	
मनःपर्यव	७	६५						६३	५९	५८	२२	१७	१	१	
केवलज्ञान, दर्शन,	२	१													१
मति अ० श्रुति अ० विभंगज्ञान	३	११७	११७	१०१	७४										
सामायिक० छेदोप०	४	६५						६३	५९	५८	२२				
परिहार विशुद्धि	२							६३	५९						
सूक्ष्मसंपराय	१	१७										१७			

यथाख्यात	४											१	१	१	०
देशविरति	१	६७					६७								
तेजोलेशी	७	१११	१०८	१०१	७४	७७	६७	६३	५९						
पद्मलेशी	७	१०८	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९						
अभव्य, मिथ्यात्व	१	११७	११७												
औपशमिक	८	७७				७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१		
सास्वादन	१	१०१		१०१											
क्षयोपशम	४	७६				७७	६७	६३	५९						
क्षायिक	११	७७				७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
मिश्र	१	७४			७४										
अणाहारी	५	११२	१०७	९४		७५									१	०

॥ इति तृतिय कर्मग्रन्थ यत्र समाप्त ॥

॥ श्री वीराय नमः ॥

अथ षडशीतिनाम चतुर्थ कर्मग्रन्थ,

卐 —— 卐

नमिअ जिणं जिअ मग्गण गुणठाणुवओग जोग लेसाओ ॥
बंधप्पबहू भावे संखिज्जाइ किमवि वुच्छं ॥ १ ॥
नमिअ जिणं वत्तव्वा चउदस जिअठाणएसु गुणठाणा ॥
जोगु वओग लेसा बंधो दओ दीरणा सत्ता ॥ १ ॥
इह सुहम[1] बायरेगिंदि[2][3] बि[4] ति[5] चउ[3] असन्नि सन्नि पंचिंदी[7] ॥
अपजत्ता[7] पज्जत्ता[7] कमेण चउदस[14] जिअट्ठाणा ॥ २ ॥
बायर[1] असन्नि[1] विगले[1] अपज्जि पढम[2] बिअ सन्नि अपजत्ते ॥
अजय[3] जुअ सन्नि पज्जे सव्वगुण[14] मिच्छ सेसेसु ॥ ३ ॥

जिनेश्वर को नमस्कार करके जीव स्थान, मार्गणास्थान, गुण स्थान, उपयोग, योग, लेश्या, बन्ध, अल्पाबहुत्व, भाव और संख्यातादि को संक्षेप में कहुंगा ॥ १ ॥ जिनेश्वर को नमस्कार करके चौदह जीव स्थान पर गुणस्थानक, योग, उपयोग, लेश्या, बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता को कहुँगा ॥ १ ॥ इस संसार में सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एके-न्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय[1] और[2] सज्ञीपंचे-न्द्रिय इनको[3] पर्याप्ता, अपर्याप्ता[4] गणनेसे[5] क्रमशः[6] चौदह जीव स्थान होते हैं[7] ॥ २ ॥ अपर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय 'असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्ता और विक-लेन्द्रीय अपर्याप्ता मे प्रथम के दो गु० होते हैं ॥ अपर्याप्ता संज्ञी पचेन्द्रीय में अविरति सहित तीन गु० होते हैं ॥ संज्ञी पंचेन्द्रिय मे सब गु० होते हैं और शेष जीव स्थानों मे मिथ्यात्व गु० होता है ॥ ३ ॥

अपजत्त छक्कि कम्मुरल मीस जोगा अपज्ज सन्निसु ॥
ते स वि उव्वमीस एसु तणु पज्जेसु उरल मन्ने ॥ ४ ॥
सव्वे सन्निपजत्ते उरल सुहुमे समासु त चउसु ॥
बायरि स वि उव्विदुग पजसन्निसु बार उवओगा ॥ ५ ॥
पज्ज चउरिंदि असन्निसु दुद स दुअनाण दससु चक्खु विणा ॥
सन्नि अपज्जे मण नाण चक्खु केवल दुग विहुणा ॥ ६ ॥

जीवस्थाने योग ॥ छे अपर्याप्ता जीवोंमें कार्मण और औदारिक मिश्र योग होता है, अपर्याप्ता सज्ञी पचेन्द्री मे वैक्रिय मिश्र सहित तीन योग होते हैं, किसी आचार्य का मत है कि शरीर पर्याप्ति पूर्ण करने पर औदारिक काय योग भी होता है ॥ ४ ॥ सज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता में सब योग होते हैं, सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्या० में औदारिक काययोग होता है, विकलेन्द्रिय पर्याप्ता और असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्ता में औदा० काय० और वचन योग होता है, बादर एकेंद्रिय पर्याप्ता में वैक्रिय द्विक सहित तीन योग होते हैं ॥ जीवस्थाने उप० ॥ पर्याप्ता सज्ञी पंचेंद्रिय में बारह उपयोग है ॥ ५ ॥ पर्याप्ता चौरिंद्रिय, पर्याप्ता असंज्ञी पचेंद्रिय में दो दर्शन और दो अज्ञान होते हैं, चार एकेन्द्रिय, दो बेइंद्रिय, दो तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय अप० और असज्ञीय पचेंद्रिय अप० में चक्षुदर्शन बिना तीन उपयोग होते हैं और सज्ञी पचेंद्रिय अपर्याप्ता मन पर्यवज्ञान, चक्षुदर्शन, केवल द्विक बिना आठ उपयोग होते हैं ॥६॥

सन्नि दुगि छलेस अपज्ज वायरे पढम चउ ति सेसेसु ॥
सत्तट्ठ बंधुदीरण संतु दया अट्ठ तेरससु ॥ ७ ॥
सत्तट्ठ छेग बंधा संतु दया सत्त अट्ठ चत्तारि ।
सत्तट्ठ छ पंच दुगं उदीरणा सन्नि पज्जते ॥ ८ ॥
गइ इंदिए य काए जोए वेए कसाय नाणेसु ॥
संजम दंसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥ ९ ॥
सुर नर तिरि निरिय गइ इग बिअ तिअ चउ पणिंदि छक्काया ॥
भू जल जलणा निल वण तसाय मण वयण तणु जोगा ॥१०॥

जीवस्थाने लेश्या, वन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता—सञ्ज्ञीद्विकमें छे लेश्या अपर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय में प्रथम की चार लेश्या और बाकी जीवस्थान में तीन लेश्या होती है ॥ बंध और उदीरणा में सात, आठ कर्म और सत्ता तथा उदय में आठ कर्म तेरह जीवस्थान संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्ता सिवाय होते हैं ॥ ७ ॥ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता में ७-८-६-१ का कर्मबन्ध होता है, सत्ता और उदय सात, आठ और चार कर्म की और उदीरणा ७-८ ६-५ कर्म की होती है ॥८॥ मार्गणास्थान---गति ४ इन्द्रिय ५ काय ६ योग ३ वेद ३ - षाय ४ ज्ञान ८ संयम ७ दर्शन ४ लेश्या ६ भव्य २ सम्यक्त्व ६ संज्ञी २ आहारी २ एवं ६२ ॥ ९ ॥ गति ४—देवता, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी, इन्द्रिय—५एकेन्द्रिय, बेरिन्द्रय, तेरिन्द्रिय चौरिन्दिय और पंचेन्द्रिय० काय ६—पृथ्वीकाय, अप्प, तेउ, वाउ, वनस्पति० और त्रसकाय, योग ३—मनयोग, वचनयोग, काययोग ॥१०॥

नं	जीवस्थान	गुणस्थान १४	योग १५	उप० १२	लेश्या ६	बंध	उदय	उदीरणा	सत्ता	अल्पबहुत्व	
१	सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्या०	१	१-३	३	३	७-८	८	७-८	८	असंख्यगुणा	१३
२	,, ,, पर्याप्ता	१	१	३	३	७-८	८	७-८	८	संख्यगुणा	१४
३	बादर ,, अपर्याप्ता	१-२	-३	३	४	७-८	८	७-८	८	असंख्यगुणा	१२
४	,, ,, पर्याप्ता	१	३	३	३	७-८	८	७-८	८	अनंतगुणा	११
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्ता	१-२	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	विशेषाधिक	१०
६	,, पर्याप्ता	१	२	३	३	७-८	८	७-८	८	,,	५
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्ता	१-२	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	,,	६
८	,, पर्याप्ता	१	२	३	३	७-८	८	७-८	८	,,	९
९	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्ता	१-२	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	,,	८
१०	,, पर्याप्ता	१	२	४	३	७-८	८	-८	८	संख्यागुणा	३
११	असंज्ञी पंचे० अपर्याप्ता	१-२	२-३	३	३	७-८	८	७-८	८	असंख्यागुणा	७
१२	,, ,, पर्याप्ता	१	२	४	३	-८	८	७ ८	८	विशेषाधिक	४
१३	संज्ञी ,, अपर्याप्ता	१ २	३ ६	८	६	७-८	८	७-८	८	असंख्यगुणा	२
१४	,, ,, पर्याप्ता	१४	१५	१२	६	७-८ ६-१	७-८ ४	७-८ ६ ५ २	७ ८ ४	सबसे स्तोक	१

वेय नरि त्थि नपुंसंक कसाय कोह मय माय लोमत्ति ॥
मइ सु अवहि मण केवल विभंग मइ सुअ नाण सागारा ॥११॥
सामाइअ छेअ परिहार सुहुम अहक्खाय देसजय अजया ॥
चक्खु अचक्खु ओही केवल दंसण अणागारा ॥१२॥
क्रिण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा वा सुक्क भव्विअरा ॥
वेअग खइगु वसम मिच्छ मीस सासण सन्निअरे ॥ १३ ॥
आहारेअरभेआ सुर निरय विभंग मइ सुओहिदुगे ॥
सम्मत्त तिगे पम्हा सुक्का सन्नीसु सन्निदुगं ॥ १४ ॥

वेद ३ पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक० । कषाय ४ क्रोध मान, माया और लोभ, ज्ञान ८ मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान मनःपर्यव ज्ञान, केवलज्ञान मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंग ज्ञान यह साकार उपयोग है ॥ ११ ॥ संयम ७ सामायक० , छेदोपस्थापनीय परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति, अविरति,॥ दर्शन ४ चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन यह अनाकार उपयोग है ॥ १२ ॥ लेश्या ६ कृष्ण०, नील० , कापोत० , तेजो० , पद्म और शुक्ल ॥ भव्य अभव्य ॥ सम्यकत्व ६ वेदक याने क्षयोपशमिक क्षायिक, उपशमिक, मिथ्यात्व, मिश्र और सास्वादन ॥ सन्नी, असन्नी ॥ आहारी, अणाहारी ॥ एव ६२ मार्गणा ॥ मार्गणा विषय जीवभेद देवगति नरकगति, विभंग ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान , अवधि दर्शन सम्यकत्वत्रिक, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या और पचेन्द्रियमें जीवके दोभेद संज्ञि पचेन्द्रिय पर्याप्ता और अपर्याप्ता ॥ १४ ॥

तमसन्नि अपज्ज जुय नरे सबायर अपज्ज तेऊए ॥
थावर इगिंदि पढमा चउ चार असन्नि दु दुविगले ॥ १५ ॥
दस चरिम तसे अजया हारग तिरि तणु कसाय दुअनाणे ॥
पढमतिलेसा भवि अर अचक्खु नपु मिच्छि सव्वेवि ॥ १६ ॥
पज सन्नी केवल दुगे भनम मणनाण देस मण मीसे ॥
पणचरिम पज्ज वयणे तिय छव पज्जियर चक्खुमि ॥ १७ ॥
थी नर पणिंदि चरमा चउ अणहारे दुसन्नि छ अपज्जा ॥
ते सुहुम अपज्ज विणा सासणि इतो गुणे वुच्छं ॥ १८ ॥

मनुष्य गतिमें पूर्वोक्त दो और लब्धी अपर्याप्ता असज्ञि युक्त होने से तीन भेद ॥ तेजो लेश्या में सज्ञिद्विक और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित तीन भेद । पांच स्थावर और एकेन्द्रिय में प्रथमके चार जीव भेद होते हैं ॥ असज्ञि मार्गणा में बारह जीव भेद और विकलेन्द्रिय मार्गणा से दो जीव भेद हैं ॥ १५ ॥ त्रसकाय में अन्त के दस जीव भेद हैं ॥ अविरति चारित्र, आहारी तिर्यंच गति, काययोग, कषाय, दोअज्ञान, प्रथम की तीन लेश्या, भव्य, अभव्य, अचक्षुदर्शन, नपुसकवेद और मिथ्यात्व मार्गणा मे सर्व जीवस्थान होते हैं ॥१६॥ केवलज्ञान, केवलदर्शन पांच संयम, मन पर्यवज्ञान, देशविरति, मनयोग और मिश्र सम्यक्त्वमें पर्याप्ता सज्ञि पचेन्द्रिय एक जीवस्थान है ॥ वचन योग मे अन्त के पर्याप्ता पांच जीव स्थान हैं ॥ चक्षुदर्शन में पर्याप्ता तीन जीवस्थान हैं या तीन पर्याप्त अपर्याप्ता मिलके छे जीव भेद होते हैं ॥१७॥ स्त्रीवेद पुरुषवेद और पचेन्द्रिय में अन्तके चार जीवस्थान होतेहैं ॥ अणाहारी मार्गणामें आठ जीव स्थान सज्ञि द्विक पर्याप्ता अपर्याप्ता और छे अपर्याप्ता ॥ सूक्ष्म अपर्याप्ता केविना सात जीवस्थान सास्वादन सम्यक्त्वमें होते हैं ॥ मार्गणा विषे गुणस्थानद्वार कहेंगें ॥ १८ ॥

५ ४ १४
पण तिरि चउ सुर निरए नर सन्नि पणिंदि भव्व तसि सव्वे ॥
२ २ १
इग विगल भु दग वणे दु दु एगंगइतस अभव्वे ॥१९॥
३ ३ ९ १० ४ २ ३
वेअ ति कसाय नव दस लोभे चउ अजइ दु ति अनाण तिगे ॥
१२
बारस अचक्खु चक्खुसु पढमा अहखाइ चरिम चउ ॥२०॥
७ ४ २
मणनाणि सगजयाइ समइय छेअ चउ दुन्नि परिहारे ॥
२ ९
केवलदुगि दोचरिमा जयाइ नव मइसुओहि दुगे ॥२१॥
८ ४ ११
अड उवसमि चउ वेअगि खइए इक्कार मिच्छतिगि देसे ॥
१ १३
सुहुमेअ सठाणं तेर जोग आहार सुक्काए ॥२२

तिर्यंचगति में आदि के पांच गुण स्थानक होते हैं ॥ देवता और नारकी मे चार गु० होते हैं ॥ मनुष्य गति, संज्ञि, पचेन्द्रिय, भव्य और त्रस काय में सब गु० होते हैं ॥ एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्पकाय, और वनस्पति काय में दो दो गु० होते हैं ॥ गतित्रस और अभव्यमें एक गु० होता है ॥ १९ ॥ तीन वेद और तीन कषाय में नव गु० होते हैं ॥ लोभ में दश गु० होते हैं ॥ अवरति मार्गणा में चार गु० होते हैं ॥ अज्ञानत्रिक में दो या तीन गु० होते है॥ अचक्षु दर्शन, चक्षुदर्शन में प्रथम के बारह गु० होते है ॥ यथाख्यात चारित्र में अन्त के चार गु० होते है ॥ २० ॥ मनःपर्यवज्ञान में प्रमत्तादि सात गु० होते हैं ॥ सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्रमें प्रमतादि चार गु० होते है ॥ परिहार विशुद्धि मे प्रमतादि दो गु० ॥ केवलद्विकमें अन्त के दो गु० और मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञानद्विक में अविरति आदि नव गु० होते हैं ॥ २१ ॥ औपसमिक सम्यकत्व में अविरतादि आठ गु०हैं ॥ वेदक सम्य० में चार गु० चौथे से सात मे तक ॥ क्षायिक सम्य० में ग्यारह गु० ॥ मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र देशविरति और सूक्ष्म संपरायमे अपना अपना एकेक गु० ॥ तीनयोग आहारी और शुक्ल लेश्यामें तेरह गु० होतेहैं॥२२॥

असन्निसु पढम दुग[2] पढमतिलेसासु छच्च[6] दुसु सत्त[7] ।
पढम[2]तिम[2] दुग अजया[1] अणहारे मग्गणासु गुणा[5] ॥ २३ ॥
सच्चे[1] अर[2] मीस[3] असच्च मोसमण[4] वय[4] विउव्वि[1] आहारा[2] ।
उरल[3] मीसा[3] कम्मण[1] इअजोगा[15] कम्म[1] अणाहारे ॥ २४ ॥
नरगइ पणिंदि तस तुण अचक्खु नर नपु कसाय सम्मदुगे ।
सन्नि छलेसा हारग भव मइ सुअ ओहि दुगिसव्वे[15] ॥ २५ ॥
तिरि इत्थि अजय सासण अनाण उवसम अभव्व मिच्छेसु ।
तेराहार[13] दुगुणा ते उरल दुगूण[11] सुरनिरए ॥ २६ ॥

असज्ञी में प्रथम के दो गु० ॥ प्रथम का ॐ तीन लेश्या मे छे गु० ॥ दो लेश्या (तेजोपद्म) में सात गु० ॥ अनाहारक मार्गणा में आदि और अन्त के दो दो गु० और अविरति गु० एव पाच गु० होते हैं ॥२३॥ मार्गणाविषे योग सत्यमन० असत्यमन० मिश्रमन० और असत्य मृषामनयोग (व्यवहार) एव चार, वचन, वैक्रिय, काय योग, आहारककाय० औदारिक काययोग एव तीन मिश्रकाययोग तथा कार्मणकाययोग एव १५ योग ॥ अनाहारकमार्गणा में कार्मण काययोग होता है ॥ २४ ॥ मनुष्य, पंचेन्द्रिय, त्रसकाय, काययोग, अचक्षुद० पुरुषवेद, नपुसकवेद, कषाय, सम्यक्त्वद्विक (क्षायिक, क्षयोप०) सज्ञी, छे लेश्या, आहारी, भव्य, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिद्विक में सवयोग होते हैं ॥२५॥ तिर्यंचगति, स्त्रीवेद, अविरति, सास्वादन तीन अज्ञान, उपशम सम्य० अभव्य और मिथ्यात्व में आहारकद्विक विना तेरह योग होते हैं ॥ देवता और नारकी में औदारिकद्विक विना पूर्वोक्त ग्यारह योग होते हैं ॥ २६ ॥

ॐ आवश्यक नियुक्ति मे पृ० ३९८१ में भद्रबाहु स्वामी लिखते हैं कि सम्यक्त्व की प्राप्तिमें सबलेश्यायें होती हैं, चारित्रकी प्राप्ति पिछली तीन शुद्ध लेश्याम होती है परन्तु चरित्र प्राप्त होनेपर अन्य कोईभी लेश्या आसकी है,

कम्मु रलदुगंथावरि ते सविउव्विदुगपंच इगि पवणे ।
छ असन्नि चरिमवइजुअ ते विउव दुगूणचउ विगले ॥२७॥
कम्मु रलमीस विणुमण वइ समइअ छेअ चक्खु मणनाणे ।
उरल दुगकम्मपढमंतिम वण वय केवल दुगंमि ॥२८॥
मण वइ उरला परिहारि सुहुमि नव ते उ मीसि स विउव्वा ।
देसे स विउव्विदुगा सकम्मुरलमीसअहखाए ॥२९॥
ति अनाण नाणपण चउ दंसण बार जिअ लक्खणवओगा ।
विणु मणनाण दुकेवलनव सुर तिरि निरिय अजएसु ॥३०॥

वायु सिवाय चार स्थावर मार्गणा में तीन योग औदारिक द्विक और कार्मण ॥ एकेन्द्रिय जाति और वायुकाय में वैक्रियद्विक सहित पांच योग ॥ असंज्ञि मार्गणामें पूर्वोक्त पांच और व्यवहार वचनयोग एवं छे योग ॥ और वैक्रियद्विक विना पूर्वोक्त चार योग विकलेन्द्रियमें ॥२७॥ मनयोग, वचनयोग, सामायिक, छेदोपस्थापनिय, चक्षुदर्शन और मनः पर्यवज्ञान में कार्मण और औदारिक मिश्र सिवाय तेरह योग और केवलद्विकमें औदारिकद्विक कार्मण काययोग और मन वचन के आदि तथा अन्त के योग होते हैं ॥२८॥ परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म संपराय चारित्र में मन योग ४ वचनयोग ४ और औदारिक काय एवं नव योग होते हैं ॥ वैक्रिय काययोग सहित दश योग मिश्र में होते है ॥ वैक्रियद्रिक सहित ग्यारह योग देशविरति में होते है । कार्मण और औदारिक मिश्र सहित ग्यारह योग यथाख्यात में होते हैं ॥ २६ ॥ मार्गणा विषे उपयोग तीन अज्ञान, पांच ज्ञान और चार दर्शन एवं १२ उपयोग जीव के लक्षणरुप है, मनःपर्यवज्ञान और केवलद्विक विना नव उपयोग देवता, तिर्यंच, नारकी और अविरति में होते हैं ॥३०॥

१ ३ ३ १ १ १ १ . १०
तस जोग वेअ सुक्का हार नर पणिंदि सन्नि भवि सव्वे ॥
नयणेयर पण लेसा कसाय दसकेवलदुगूणा ॥३१॥
चउरिंदि असन्नि दुअन्नाण दु दस इग बि ति थावर अचक्खु ॥
तिअनाण दंसणदुगं अनाणतिगि अभवि मिच्छदुगे ॥ ३२ ॥
केवल दुगे निअदुगं नव तिअ अनाण विणु खइअ अहखाए ॥
दंसणनाणतिग देसि मीसि अनाणमीसंतं ॥ ३३ ॥
मणनाण चक्खु वज्जा अणहारे तिन्निदंस चउनाण ॥
चउनाण संजमोवसम वेअगे ओहिदंसे अ ॥ ३४ ॥

त्रसकाय, योग ३ वेद ३ शुक्ललेश्या आहारी, मनुष्यगति, पंचेंद्रि यजाति, संज्ञी और भव्य मार्गणामें सब उपयोग होते हैं ॥ चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन पांच लेश्या और कषाय मार्गणामें केवलद्विक सिवाय दश उपयोग होते हैं ॥ ३१ ॥ चौरिन्द्रिय और असंज्ञी मार्गणामें दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं ॥ एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेरन्द्रिय और स्थावर मार्गणामें चक्षुदर्शन बिना तीन उपयोग होते हैं और तीन अज्ञान दो दर्शन ए पांच उपयोग, तीन अज्ञान, अभव्य और मिथ्यात्वद्विक (मिथ्यात्व सास्वादन) में होता है ॥३२॥ केवलद्विकमें उपयोग होता है ॥ क्षायिक सम्य० और यथाख्यात चा० में तीन अज्ञान बिना नव उपयोग होते हैं ॥ देश विरति में तीन दर्शन तीन ज्ञान होते हैं ॥ मिश्र मार्गणा में पूर्वोक्त छ उपयोग परन्तु ज्ञान, अज्ञान मिश्रित है ॥ ३३ ॥ मनपर्यव और चक्षुदर्शन बिना दस उपयोग अनाहारी में होते हैं ॥ तीन दर्शन और चार ज्ञान ए ७ उपयोग चार ज्ञान, चार संयम, उपशम सम्य० और वेदक सम्य० और अवधिदर्शन में होते हैं ॥ ३४ ॥

दो तेर तेर बारस मणे कमा अट्ठ दुचउ चउ वयणे ॥
चउ दु पण तिन्नि काये जिअ गुण जोगो वओग अन्ने ॥ ३५ ॥

छसु लेसाउ सठाणं एगिंदि असन्नि भू दग वणेउ ॥
पढमा चउरो तिन्निउ नारय विगलग्गि पवणेसु ॥ ३६ ॥

अहखाय सुहुम केवल दुगि सुक्का छवि सेसठाणेसु ॥
नर निरय देव तिरिआ थोव दु असंख णंत गुणा ॥२७॥
पण चउ ति दु एगिंदि थोवा तिन्नि अहिया अणंत गुणा ॥
तस थोव असंखग्गी भूजल निल अहिय वण णंता ॥ ३८ ॥

अन्य आचार्य मनयोग में जीवस्थान दो, गुणस्थान १३ योग १३ उपयोग १२, वचनयोगमें जीव० ८ गु० दो, योग चार उपयोग चार, काय योगमें जीव० ४ गु० दो. योगपांच और उपयोगतीन मानते ❀ है ॥३५॥ मार्गणा विषय लेश्या छे लेश्या मार्गणा में अपनी अपनी लेश्या ॥ एकेन्द्रिय, असंज्ञि, पृथ्वीकाय अप्पकाय और वनस्पतिकायमें प्रथमकी चार लेश्या नारकी, विकलेन्द्रिय, तेउकाय और वाउकाय में तीन लेश्या ॥३६॥ यथाख्यात चा० सूक्ष्म संपराय चा० और केवलद्विकमें शुक्ल लेश्या होती है ॥ बाकी शेष ४१ मार्गणामें छेओं लेश्या होती है ॥ अल्पबहुत्व सबसे स्तोक मनुष्य, नारकी असंख्यात गुणा, देवता अस० गुणा और तिर्यंच अनन्त गु० ॥ १ ॥ ३७ ॥ पचेन्द्रिय सबसे स्तोक चौरिन्द्रिय, तेरेन्द्रिय, बेरिन्द्रिय अनुक्रम से परस्पर एकेकसे अधिक और एकेन्द्रिय अनंतगुणा ॥ २ ॥ सबसे स्तोक त्रस अग्नि काय असं० गुणा, पृथ्वीकाय विशेषाधिक, अप्पकाय वि० वाउकाय वि० और वनस्पतिकाय अनन्त गुणा ॥ ३ ॥ ३८ ॥

❀ इसके लिये देखो गाथ १६-२२-२५-२८-३१ में क्या लिखा है.

मण वयण काय जोगी थोवा असंखगुण अणंत गुणा ॥
पुरिसा थोवा इत्थी संख गुणा णंत गुणा कीवा ॥ ३९ ॥
माणी कोही मायी लोभी अहिय मण नाणिणो थोवा ॥
ओहि असंखा मइसुय अहिय सम असंख विभंगा ॥ ४० ॥
केवलीणो णंतगुणा मइ सुय अन्नाणि णंतगुणतुल्ला ॥
सुहुमा थोवा परिहार संख अहखाय संखगुणा ॥ ४१ ॥
छेय समइय संखा देस असंख गुण णंतगुण अजया ॥
थोव असंख दुणंता ओहि नयण केवल अचक्खु ॥ ४२ ॥

मनयोगी स्तोक, वचनयोगी अस० गुणा, काययोगी अनन्त गुणा ॥ ४ ॥ सबसे स्तोक पुरुषवेद स्त्रीवेद सं० गुणी और नपुंसकवेद अनन्त गुणा ॥ ५ ॥ ३९ ॥ सबसे स्तोक मानी क्रोधी विशे० मायी विशे० लोभी विशेषाधिक ॥ ६ ॥ सबसे स्तोक मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, असं०गु० मति श्रुत ज्ञानी परस्पर तुल्य अवधि से वि० विभंग ज्ञानी अस० गु० केवलज्ञानी अनन्त गु० मति श्रुत ज्ञानी अनन्त गु० और परस्पर तुल्य ॥ ७ ॥ सबसे स्तोक सूक्ष्म संपरायचा० परिहारविशुद्धचा० सं० गु० यथाख्यातचा० सं० गु० ॥ ४० ॥ ४१ ॥ छेदोपस्थापनीयचा० सं० गु० सामायिकचा० सं० गु० देशविरति चा० असं० और अविरति अनन्त गु० ॥ ८ ॥ सबसे स्तोक अवधिदर्शनी, चक्षुदर्शनी, असं० गु० केवल दर्शनी अनन्त गु० अचक्षु दर्शनी अनन्त गु० ॥ ९ । ५ ॥

पच्छाणु पुव्विलेसा थोवा दोअसंख णंत दो अहिआ ॥
अभविअरथोवणंता सासण थोवोवसम संखा ॥ ४३ ॥
मीसासंखा वेअग असंखगुण खइअ मिच्छ दुअणंता ॥
सन्निअरथोवणंता णहारथोवे अरअसंखा ॥ ४४ ॥
सव्वजिअठाण[14] मिच्छे सग[7] सासणि पण अपज्ज सन्नि दुगं ॥
सम्मे सन्नि दुविहो[2] सेसेसु सन्नि पज्जत्तो[1] ॥ ४५ ॥
मिच्छदुगि अजय जोगाहारग दुगूणा[13] अपुव्व पणगेउ ॥
मणवय उरल[9] स विउव्वि[10] मीसि सविउव्वि दुग[11] देसे ॥ ४६ ॥

सवसे स्तोक शुक्ललेशी, पद्मलेशी अस० गु०, तेजोलेशो असं० गु० कापोतलेशी, अनन्त गु० नीललेशी विशे० कृष्णलेशी विशे० ॥ १० ॥ सवसेस्तोक अभव्य, भव्य अनन्त गु० ॥ ११ ॥ सबसे स्तोक सास्वादन सम्यक्त्वी, उपशम सम्य० स० गु० ॥ ४३ ॥ मिश्रदृष्टि सं० गु० क्षयोपशमसम्य० अस० गु० क्षायिकसम्य० अनन्तगुणा, मिथ्यात्वी, अनन्त गु० ॥१२॥ सवसे स्तोक संज्ञि असंज्ञि अनन्त गुणा ॥१३॥ सवसे स्तोक अनाहारी, अहारी असंख्यात गुणा ॥ १४ ॥ ४४ ॥ गुणस्थान विषे जीवस्थान मिथ्यात्व गु० में सब जीव स्थान ॥ पांच अपर्याप्ता और संज्ञिद्विक एवं ७ जीवस्थान सास्वादन गु० में होते हैं ॥ अविरति स० गु० मेंसज्ञिद्विक होता है और शेष गुणस्थानों में एक संज्ञि पर्याप्ता होता है ॥ ४५ ॥ गु० योग मिथ्यात्वद्विक और अविरति स० गु० आहारकद्विक बिना तेरह योग होते हैं ॥ अपूर्वादि पांच गु० मे मन ४ वचन ४ और औदारिक काय एवं ९ योग होते है ॥ वैक्रिय काययोग सहित दश योग मिश्र गु० में होते हैं और देशविरति गु० में वैक्रिय द्विक सहित ग्यारह योग होते हैं ॥ ४६ ॥

संख्या	मार्गणा ६२ के नाम	जीवों के भेद १४	गुणस्थान १४	योग १५	उपयोग १२	लेश्या ६	अल्प बहुत्व	क्रमांक
१	देवगति	२	४	११	९	६	असं० गुण०	[illegible]
२	मनुष्यगति	३	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
३	तिर्यंचगति	१४	५	१३	९	६	अनंत गुण०	४
४	नरकगति	२	४	११	९	३	असं० गुण०	२
५	एकेन्द्रिय	४	२	५	३	४	अनंत गुण०	५
६	बेइन्द्रिय	२	२	४	३	३	विशेषा	४
७	तेइन्द्रिय	२	२	४	३	३	विशेषा	३
८	चौरिन्द्रिय	२	२	४	४	३	विशेषा	२
९	पंचेन्द्रिय	४	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
१०	पृथ्वीकाय	४	२	३	३	४	विशेषा	३
११	अप्काय	४	२	३	३	४	विशेषा	४
१२	तेउकाय	४	१	३	३	३	असं० गुण०	२
१३	वायुकाय	४	१	५	३	३	विशेषा	५
१४	वनस्पतिकाय	४	२	३	३	४	अनंत गुण०	६
१५	त्रसकाय	१०	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
१६	मनयोगी	२	१३	१३	१२	६	स्तोक	१
१७	वचनयोगी	५	१३	१३	१२	६	असं० गुण०	२
१८	काययोगी	१४	[illegible]	१५	१२	६	अनंत गुण०	३

१९	पुरुषवेद	२	९	१५	१२	६	स्तोक	१
२०	स्त्रीवेद	२	९	१३	१२	६	संख्या गु.	२
२१	नपुसंकवेद	१४	९	१५	१२	६	अनंत गु	३
२२	क्रोधकषायी	१४	९	१५	१०	६	विशेषा	२
२३	मानकषायी	१४	९	१५	१०	६	स्तोक	१
२४	मायाकषायी	१४	९	१५	१०	६	विशेषा	३
२५	लोभकषायी	१४	१०	१५	१०	६	,,	४
२६	मतिज्ञानी	२	९	१५	७	६	असं. गु.	३
२७	श्रुतज्ञानी	२	९	१५	७	६	तुल्य	४
२८	अवधिज्ञानी	२	९	१५	७	६	असं. गु.	२
२९	मनःपर्यवज्ञानी	१	७	१३	७	६	स्तोक	१
३०	केवलज्ञानी	१	२	७	२	१	अनत. गु	६
३१	मतिअज्ञानी	१४	२/३	१३	५	६	,,	७
३२	श्रुतअज्ञानी	१४	,,	१३	५	६	तुल्य	८
३३	विभगज्ञानी	२	,,	१३	५	६	असंख्य गु.	५
३४	सामायिक चा०	१	४	१३	७	६	संख्य गु.	५
३५	छेदोपस्थापनीय	१	४	१३	७	६	,,	४
३६	परिहार विशुद्धि	१	२	९	७	६	,,	२
३७	सूक्ष्म सपराय	१	१	९	७	१	स्तोक	१
३८	यथाख्यात०	१	४	११	९	१	संख्य गु.	३
३९	देशविरति	१	१	११	६	६	असं. गु.	६
४०	अविरति	१४	४	१३	९	६	अनंत गु	७
४१	चक्षुदर्शन	३/६	१२	१३	१०	६	असं गु.	२
४२	अचक्षुदर्शन	१४	१२	१५	१०	६	अनंत गु०	४

४३	अवधिदर्शन	२	६	१५	७	६	स्तोक	१
४४	केवलदर्शन	१	२	७	२	१	अनंतगु	३
४५	कृष्णलेशी	१४	६	१५	१०	१	विशेषा	६
४६	नीललेशी	१४	६	१५	१०	१	विशेषा	५
४७	कापोतलेशी	१४	६	१५	१०	६	अनंतगु	४
४८	तेजोलेशी	३	७	१५	१०	१	असं गु	३
४९	पद्मलेशी	२	७	१५	१०	१	असं गु	२
५०	शुक्ललेशी	२	१३	१५	१२	१	स्तोक	१
५१	भव्य	१४	१४	१५	१२	६	अनंतगु	२
५२	अभव्य	१४	१	१३	५	६	स्तोक	१
५३	वेदकसम्यक्त्व (क्षायोपशम)	२	४	१५	७	६	असं गु	४
५४	क्षायिकसम्य	२	११	१५	९	६	अनंतगु	५
५५	उपशमसम्य०	२	८	१३	७	६	संख्यगु	२
५६	मिश्रदृष्टि	१	१	१०	६	६	संख्यगु	३
५७	सास्वादन	७	१	१३	५	६	स्तोक	१
५८	मिथ्यात्व	१४	१	१३	५	६	अनंतगु	६
५९	संज्ञि	२	१४	१५	१२	६	स्तोक	१
६०	असंज्ञि	१२	२	६	४	४	अनन्तगु	२
६१	आहारी	१४	१४	१५	१२	६	असंगु०	२
६२	अणाहारी	८	५	१	१०	६	स्तोक	१



साहारदुग[13] पमत्ते तेविउव्वाहार मीस विणु[11] इअरे ॥
कम्मुरल दुगं[2] तडाम मण[2] वयग[2] सजोगि[7] न अजोगि ॥ ४७ ॥
ति अनाण दुदंसाइम[5] दुगे अजइ देसि नाण[3] दंस[3] तिगं ॥
ते मीसि मीसा समणा[7] जयाइ केवल दु अंत दुगे[2] ॥ ४८ ॥
सासण भावे नाणं विउव्वगाहारगे उर मिस्सं ॥
नेगिंदिसु सासाणो नेहाहिगयं सुयमयंपि ॥ ४९ ॥
छसु सव्वा तेउ तिगं इगि छसु सुक्का अजोगि अल्लेसा ॥
वंधस्स मिच्छ अविरइ कसाय जोगत्ति चउ हेऊ ॥ ५० ॥

आहारकद्विक सहित तेरहयोग प्रमत गु० में होते हैं ॥ वैक्रियमिश्र तथा आहारक मिश्र बिना ग्यारह योग अप्रमत गु० मे होते हैं ॥ कार्मणकाय औदारिकद्विक और मन तथा वचन केआदि, अन्तके दो दो योग एवं ७ योग सयोगी में होते हैं और अयोगी गु० मे याग नही होते ॥ ४७ ॥ गु० उपयोग पहिले के दो गु० में तीन अज्ञान और दो दर्शन होते हैं ॥ अविरति और देशविरति गु० तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं । मिश्र गु० मे अज्ञान मिश्रित होता है ॥ मन'पर्यव ज्ञान सहित सात उपयोग प्रमत्तादि सात गु० मे होते हैं ॥ और अन्त के दो गु० में केवलद्विक होता है ॥ ४८ ॥ सिद्धात का मन्तव्य सास्वादन अवस्था मे सम्यग्ज्ञान वैक्रिय शरीर बनाते तथा आहारक शरीर बनाते समय औदारिक मिश्र और एकेन्द्रिय जीवों मे सास्वादन गु० का अभाव ये तीन बातें सिद्धांत वाले मानते है परन्तु इस ग्रन्थमें इसका अधिकार नही है ॥ ४९ ॥ गु० लेश्या छे गु० मे सब लेश्याएं होती है ॥ अप्रमत गु० तीन (तेजो० प० शु०) होती है औरअपूर्वादि छे गु० मे शुक्ल लेश्या होतो है ॥ आयोगी अलेशी होता है कर्म वंध के चार हेतु मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ॥ ५० ॥

अभिगहिअ मणभिगहिआ भिनिवेसिय ससइअ मणाभोग ॥
पणमिच्छ बार अविरइ मण करणा निअमु छ जिअ वहो ॥५१॥
नव सोल कसाया पनर जोग इय उत्तराउ सगवन्ना ॥
इग चउ पण तिगुणेसु चउ ति दु इग पच्चओ बंधो ॥ ५२ ॥
चउ मिच्छ मिच्छ अविरइ पच्चइआ साय सोल १६ पणतीसा ३५॥
जोग विणु ति पच्चइआ हारग जिण वज्ज सेसाओ ॥ ५३ ॥

अभिग्राहिक, अनाभिग्राहिक, आभिनिवेशिक, सांशयिक और अनाभोग ॥ एवं पांच मिथ्यात्व ॥ मन और पांच इन्द्रिय इन छे को नियम में न रखना तथा पृथव्यादि छे काय का वध करना एवं बारह अविरत ॥ ५१ ॥ नवनोकषाय और १६ कषाय एवं पच्चीस कषाय और पन्द्रह योग एवम् उत्तर भेद ५७ हैं ॥ प्रथम गु० में मूल चार बंध हेतु० सास्वादनादि चार गु में तीन बंध हेतु मिथ्यात्वटला ॥ प्रमत्तादि पांच गु० में दोबन्ध हेतु ॥ अविरतटला ॥ उपशांतादि तीन गु० में एक योग प्रत्ययिक बन्ध होता है और अयोगी अबंधक ॥ ५२ ॥ १२० प्रकृति विषे मूल बंध हेतु, सातावेदनी चारों हेतुओं से बंधती है सास्वादन गु० में जिन सोलह प्र० का बन्धविच्छेद होता है वह मिथ्यात्व प्रत्ययिकी है ॥ केवल मिथ्यात्व से ही है बंधती है पैंतीस प्र० जिनका बन्ध विच्छेद मिश्र० अवि० देश० गु० में होता है वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रत्ययिकी है इन प्रकृतियों को मिथ्यात्व में वरतता हुआ जीव मिथ्यात्व से बन्धता है और दूसरे आदि गु० में अविरति से बंधता है पूर्वोक्त ५२ और जिन नाम, अहारक द्विक विना शेष ६५ प्रकृति का बन्ध तीन बंध हेतुओं (मि० अ० क०) से होता है क्योंकि पहले गु० में रहा हुआ मिथ्यात्व से दूसरादि ४ गु० में अविरत से छट्ठादि ४ गु० में कषायसे बन्ध होता है ॥ जिननाम बंध का कारण सम्यक्त्व और अहारक द्विक का संयम माना है इसलिये तीन प्रकृतियों की गणना कषाय हेतुओं में नहीं की ॥ ५३ ॥

५५ ५० ४३ ४६ ३९ २६ २४ २२
पणपन्न पन्ना तिअ छहिअ चत्त गुणचत्त छ चउ इगवीसा ॥
१६ १० ९ ९ ७
सोलस दस नव नव सत्त हेउणो नउ अजोगिंमि ॥५४॥
५५ २ ५० ५
पणपन्न मिच्छि होरग दुगूण सासाणि पन्न मिच्छ विणा ॥
२ १ ४ ४३ ४६
मीस दुग कम्म अण विणु तिचत्त मीसे अह छ चत्ता ॥५५॥
२ १ १ १ ४
सदु मीस कम्म अजए अविरइ कम्मुरल मीस बि कसाए ॥
३९ २६ २
मुत्तु गुण चत देसे छविस सहार दु पमत्ते ॥५६॥

गु० विषे उत्तर बंध हेतु प्रथम गु० ५५, दूजे गु ५०, तीजे गु० ४३ चोथे गु० ४६, पांचवे गु० ३९, छट्टे गु २६. सातवे गु २४, आठवे २२ नवमें १६, दश १०, ग्यारहमे, बारहवे ९, तेरहवे ७, चौदहवे गु० अबंध ॥ ५४ ॥ आहारकद्विक विना ५५ बन्ध हेतु मिथ्यात्व गु० में होते हैं ॥ मिथ्यात्व पांच विना सास्वादन गु० में ५० बन्ध हेतु होते हैं ॥ औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र एव मिश्रद्विक तथा कार्मण काययोग और अनन्तानुबन्धी कषाय एवं ७ विना ४३ बंध हेतु मिश्र गु० मेंहाते हैं ॥ अब ४६ का बंध हेतुकहते हैं ॥ ५५ ॥ मिश्रद्विक और कार्मण काययोग सहित ४६ का बंध हेतु ४६ का बंध हेतु अविरति सम्य० गु० में होता है ॥ त्रसकाय की अविरति, कर्मण काय योग औदारिक मिश्र और अप्रत्याख्यानी कषाय एवं ७ विना ३९ बंधहेतु देशविरति गु० मेंहोते हैं ॥ और प्रमत गु० में ग्यारह अविरति चार प्रत्याख्यानी कषाय एवं १५ बंध हेतु नहीं है और आहारद्विक का बंध है ॥ इसलिये २६ बंध हेतु है॥ ॥ ५६ ॥

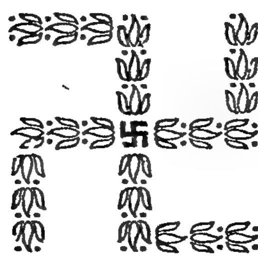
॥पचसंग्रहद्वार ४ गाथा १९ मे जिननाम, आहारक द्विक तीन प्रकृतियों को कषाय हेतु माना है परन्तु यहां इन तीन प्रकृतियों को कषाय हेतुक नहीं कहा परन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि सब कर्म प्रकृति और प्रदेश कारणता है और स्थिति तथा अनुभाग बंध में कषायको कारणता है इसका विशेष विचार पंचसंग्रह मलयगिरिटीका मे देखने योग्य है ॥

११ ४ २
अविरइ इगार तिकसायवज्ज अपमत्ति मीस दुग रहिआ ॥
२४ २२ १ १
चउवीस अपुव्वे पुण दुवीस अविउव्वि आहारे ॥ ५७ ॥
६ १६ १० ३ ३
अछहास सोलबायरि सुहुमे दसवेअ सजलणतिविणा ॥
६ ६ १
खीणुवसंतिअलोभा सजोगिपुव्वुत्त सग जोगा ॥ ५८ ॥
७ ८
अपमत्त ता सत्तट्ठ मीस अपुव्वबायरा सत्त ॥
६ १
बंधइ छस्सुहुमो एगमुवरिमा अबंधगाजोगी ॥ ५९ ॥
८ ७
आसुहुम सतुदए अट्ठवि मोह विणु सत्त खीणमी ॥
४ ८
चउ चरिम दुगे अट्ठउसंते उवसंति सत्तु दए ॥ ६० ॥

अप्रमत्त गु० में आहारकमिश्र और वैक्रियमिश्र विना २४ बंध हेतु हैं ॥ अपूर्व करण गु० में आहारक और वैक्रिय काययोग विना २२ का बंध हेतु है ॥ ५७ ॥ हास्यादि षट् विना सोलह बंध हेतु बादर सपराय गु० में होते हैं ॥ तीन वेद और संज्वल विना दश बंध हेतु सूक्ष्म सपराय गु० मेंहोते हैं ॥ और सज्वल त्रिकविना नव बंध हेतु उपशांत और क्षीणमोह गु० मेंहोते हैं सयोगी गु० में पूर्वोक्त सातयोग होते हैं ॥५८॥ गु० विषे मूल प्रकृति बंध प्रथम गु० से अप्रमत्त गु० पर्यंत सात, आठ कर्म बन्ध है ॥ मिश्र अपूर्व करण, और बादर सपराय गु० मेंसात कर्म का बंध है ॥ सूक्ष्म सपराय गु० में छे कर्म का बंध है ॥ ऊपर के तीन गु० (११-१२-१३) में एक कर्म का बंध है और अयोगी गु० अबंधक है ॥५९॥ उदय सत्ता सूक्ष्म सपराय गु० पर्यंत आठों कर्म की सत्ता और उदय है ॥ मोहनीय कर्म विना सात कर्म की सत्ता और उदय क्षीण मोह गु० में होती है ॥ अन्तके दो गु० में चार कर्मकी सत्ता और उदय है और उपशांत मोह गु० में आठ कर्म की सत्ता और सात कर्म का उदय होता है ॥ ६० ॥

सास्वादन, मिश्र, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति, सूक्ष्म संपराय' उपशांत मोह क्षीणमोह और सयोगी इन आठ गु० में किसी समय जीव होते हैं और किसी समय नहीं होते तथा किसी समय एक जीव होता हैं और किसी समय अनेक जीव होते हैं जिसके भंग ६५६१, हैं ॥

संयोग	गुणस्थान आश्रयी भांगा,	एकजीव अनेकजीव आश्रयी, भांगा	जीव तथा गुणस्थान आश्रयी, परस्पर भांगा
असयोगी	१	१	१
एक संयोगी	८	२	१६
दो ,,	२८	४	११२
तीन ,,	५६	८	४४८
चार ,,	७०	१६	११२०
पांच ,,	५६	३२	१७९२
छे ,,	२८	६४	१७९२
सात ,,	८	१२८	१०२४
आठ ,,	१	२५६	२५६
कुल भांगा	२५६	५११	६५६१



खीए केवल जुअल सम्म दाणाइ लद्धि पण चरण ॥
तइए सेसुवओगा पण लद्धि सम्म विरइ दुग ॥६५॥
अन्नाण मसिद्धत्ता सजम लेसा कसाय गइ वेआ ॥
मिच्छ तुरिए भव्वा भव्वत्त जिअत्त परिणामे ॥६६॥
चउ चउ गइसु मीसग परिणामु दएहि चउ सखइहिं ॥
उवसम जुएहि वा चउ केवलि परिणामुदय खइए ॥ ६७ ॥
खय परिणामे सिद्धा नराण पण जोगु वसम सेढिए ॥
इअ पनर सन्नि वाइअ भेया वीस असमनिखो ॥ ६८ ॥

क्षायिक भाव नौ भेद, केवलज्ञान, केवल दर्शन क्षायकसम्य० दा नादि पाच लब्धी और क्षायिक चारित्र ॥ क्षयोपशमिक भावके १८ भेद केवलद्विक बिना १० उपयोग, दानादि पाच लब्धी, क्षयोपशम सम्य ०, विरतिद्विक देशविरति और सर्व विरति ॥ ६५ ॥ औदयिक भाव के २१ भेद, अज्ञान, असिद्धत्व, असयम, छे लेश्या, चार कषाय, चार गति, तीन वेद और मिथ्यात्व परिणामिक भाव तीनभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व एवम त्रेपन भेद ५३ ॥ ६६ ॥ क्षयोप० परिणा० और औद यिक यह तीन सयोगी भागा चार गति आश्रयि होते हैं ॥ क्षायिक भाव सहित चार सयोगी भागा चार गति आश्रयि चार भेद तथा औपशमिक सहित चार सयोगी भागा चार गति आश्रयि चार भेद और परिणामिक औदयिक क्षायिक यह तीन सयोगी भागा केवली में होता है ॥ ६७ ॥ क्षायिक, और परिणामिक यह दो सयोगी भागा सिद्ध में होता है उपशम श्रेणी वर्तते हुए मनुष्य को पाच सयोगी भागा होता है एवम् छे सानि पातिक भागोंके १५ भेद होते हैं ॥ शेष २० सानिपातिकभाव शून्य है ॥६ ॥

मोहो वसमो मीसी चउ घाइसु अट्ठ कम्मसु असेसा ॥
धम्माइ परिणामिअ भावे खंधा उदइए वि ॥ ६९ ॥

मोहनीय कर्म का ही औपशमिक भाव होता है, त्तयोपशमिक भाव चार घातीकर्मोंका होता है ॥ शेष भाव आठ कर्मों के हैं ॥ धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य परिणामिक भाव में होते हैं, परन्तु अनन्त प्रदेशी स्कध औदयिक भाव में होता हैं ॥ ६९ ॥

—:o:—

भांगा २६ स्थापना

१ औपश० त्तायिक	१ औप० त्तायिक० त्तयाप०	१ औप० त्ता० त्तयो० औद०
२ औप० त्तयो०	२ ,, ,, औद०	२ ,, ,, ,, परि०
३ औप० औदयिक०	३ ,, ,, परि०	३ ,, ,, औद० ,,
४ औप० परिणामिक	४ ,, त्तयो० औद०	४ ,, त्तयो ,, ,, ४ गतिमें
५ त्तायिक. परि. सिद्धमें	५ ,, ,, परि०	५ त्ता० ,, ,, ,, ४ गतिमें
६ त्तायिक० औद०	६ ,, औद० ,,	६ औप० त्ता० त्त० औ प०
७ त्तायिक० त्तयोप०	७ त्तायि त्तयो० औद०	उपशम श्रेणी मनुष्य में
८ त्तयोप० औद०	८ ,, ,, परि०	
९ त्तयोप० परि०	९ ,, औद० परि० केवलीमें	
	१० त्तयो० औद० परि० ४ गतिमें	

सम्माइ चउसु तिग चउ भावा चउ पणु वसामगु वसंते ॥
चउ खीणा पुव्वे तिन्नि सेस गुणठाण गेग जिए ॥७०॥

संखिज्जेगमसंख परित्त जुत्त नियपय जुयतिविह ॥
एवमणंतपि तिहा जहन्न मज्झुक्कसा सव्वे ॥७१॥

लहुसंखिज्जं दुच्चिअ अओपर मज्झिमंतु जागुरुअं ॥
जंबुद्दीव पमाणय चउ पल्ल परूवणाइ इम ॥७२॥

पल्लाणवट्ठिय सलाग पडिसलाग महासलागरक्खा ॥
जोअण सहसो गाढा सवेइअंता ससिह भरिआ ॥७३॥

अविरति सम्यक्त्वदृष्टि आदि चार गु० में तीन या चार भाव होते हैं। नौ, दश, ग्यारहवे गु० में चार या पांच भाव होते हैं। क्षीण मोह और अपूर्व करण गु० में चार भाव होते हैं। और शेष गु० में तीन भाव होते हैं ॥ यह भाव एक जीव आश्रयि कहा हैं ॥७०॥ संख्यात एक है। असंख्याते के तीन भेद हैं (१) परित (२) युक्त (३) निजपदयुक्त अर्थात् असंख्यातासंख्यात ॥ इसी तरह अनंते के भी तीन भेद हैं। इनसबके तीन तीन भेद जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट एव सर्व २१ भेद होते हैं ॥७१॥ लघुसंख्या दो की है॥ इससे आगे तीन की संख्या से उत्कृष्ट के बीच की संख्यायें सब मध्यम संख्याता है ॥ उत्कृष्ट संख्या का स्वरूप जम्बूद्विप प्रमाण चार प्यालों की प्ररूपणा से जाना जाता है ॥७२॥ चारप्याले—(१) अनवस्थित (२) शलाका (३) प्रतिशलाका (४) महाशलाका है ॥ चारों प्याले गहरा इनमें एक हजार योजन और उंचाई में जम्बुद्वीपकी पद्मवर वेदिका पर्यंत अथवा साढेआठ योजन प्रमाण इसको शिखा सहित सरसों से पूर्ण भरना ॥७३॥

तो दीव दहिसु इक्किक्क सरिसवं खिविअ निट्ठिए पढमे ॥
पढमं व तदंतं चिय पुण भरिएतंमि तह खीणे ॥७४॥

खिप्पइसलाग पल्लेगु सरिसवो इअ सलाग खवणेणं
पुण्णो बीओअ तओ पुव्वंपिव तंमि उद्धरिए ॥७५॥

खिणे सलाग तइए एवं पढमेहिं बीअयं भरसु ॥
तेहिं तइअं तेहिय तुरिअं जा किर फुडा चउरो ॥७६॥

पढम ति पल्लुद्धरिआ दीव दही पल्ल चउ सरिसवाय ॥
सव्वोवि एगरासि रूवूणो परम संखिज्जं ॥७७॥

पूर्ण अनवस्थित भरे हुवे प्याले में से एकेक सरसव द्विप समुद्र में डालना चाहिये। जिस द्विप समुद्र में सरसव समाप्त हो जाय उस द्विप समुद्र के बराबर विस्तार वाला अनवस्थित प्याला बनाकर उसे सरसव से भरे फिर उसी तरह एकेक सरसव द्वीप समुद्र में डाल कर इसको भी खाली करने पर एक सरसव सलाक प्याले में डाले। इस तरह एकेक सरसव डालने से जब दूसरा शलाक प्याला भर जाय तब उसे पूर्ववत् उठावे और एकेक सरसव द्वीप समुद्र में डालकर खाली करे। खाली होने पर एक सरसव प्रतिशलाक में डाले। इस तरह अनवस्थित से शलाकको और शलाक से प्रतिशलाकको तथा प्रतिशलाक से महाशलाकको एवं चारों प्यालों को पूर्ण भर देना चाहिये ॥७४॥७५॥७६॥ फिर प्रथमादि तीन प्यालों से द्वीप समुद्र में डाले हुवे सब सरसवों को इकठे करे और चार प्याले भरे हुवे इन सबकी एक राशी अर्थात् ढेरी करे उसमें से एक सरसव न्यून करने पर उसकी जो संख्या हो उसको उत्कृष्ट संख्याता कहते है ॥७७॥

रुवजुअतु परित्ता सस लहु असस,रासि अब्भासे ॥
जुत्ता सखिज्ज लहु आवलिआ समय परिमाण ॥७८॥

उत्कृष्ट सख्याते में एकरूप मिलाने से जघन्य परित असख्याता होता है ॥ जघन्य परित्तसख्याते को राशी अभ्यास करने से जघन्ययुक्त असख्याता होता है ॥ जघन्ययुक्त असख्याता एक आवलीकाके समयों का परिमाण है ॥७८॥

पिछली गाथा में असख्याते के चार भेद कह दिये है अब उनके शेष भेदों का स्वरूप बतलाते हैं ॥

असख्याता और अनते के मूल तीन २ हैं। उनके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट करने से १८ भेद होते हैं जिसको ७१ वीं गाथा में दिखाये है ॥ उन छे मूल भेदों में से दूसरे युक्त असख्याते का राशी अभ्यास करने से नौ उत्तर भेदों में से सातवा असं० अर्थात् जघन्य असख्यातासख्यात होता है। जघन्य असख्याता सख्यात में एकरूप होने से पीछे का उत्कृष्ट अर्थात् उत्कृष्टयुक्त असख्याता होता है। और जघन्य तथा उत्कृष्टयुक्त असंख्याते के बीच की सख्या को मध्यम युक्त असख्याता कहते हैं। उक्त छे मूल भेदोंमें से तीसरे असं० असं० का राशी अभ्यास करने से प्रथम का अ० परितअनत होता है। इसमें से एक रुप कम करने पर उ० असं० असं० होता हैं। ज० अ० के बीच की सख्या को मध्यम असं० असं० कहते है ॥

( ) जघन्य युक्त असख्याते मे से एकरुप कम करने से उत्कृष्ट परित असख्याता होता है और जघन्य परित असख्याता तथा उत्कृष्ट परित असख्याता के बीच की सब सख्याओं को मध्यम परित असख्याता कहते हैं।

ॐ

शतकनामा पंचम कर्मग्रन्थ



नमिय जिणं धुवबंधो दयसत्ता घाइ पुन्न परिअत्ता ॥
सेअर चउह विवागा वुच्छं बंधविह सामीअ ॥ १ ॥

४ १ १ १ १ १ १ १
वन्नचउ तेअ कम्मा गुरुलहु निमिणो वघाय भय कुच्छा ॥
१ १६ १४ ५ ४७
मिच्छ कसाया वरणा विग्घं धुवबंधि सग चत्ता ॥ २ ॥

३ ३ ६ ६ ५ ४ २ ४
तणु वंगा गिइ संघयण जाइ गइ खगइ पुव्वि जिणु सासं ॥
१ १ १ २० २ २
उज्जो आयव परघा तसवीसा गोय वेयणिअं ॥ ३ ॥

जिनेश्वर भगवानको नमस्कार करके ध्रुवबंधी, ध्रुवउदइ, ध्रुवसत्ता, घाती, पुन्य और परावर्तमान प्रकृत्तियों को प्रतिपत्ति सहित तथा चार प्रकार का विपाक दिखानेवाली प्रकृत्ति, बंध विधि, बंध स्वामित्व और उपशमश्रेणि, क्षपकश्रेणि वगेरह कहूंगा ॥ १ ॥ ध्रुवबंधी ४७ ॥ वरणादि चार (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) तेजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, भय, कुच्छा, मिथ्यात्व मोहनीय, सोलह कषाय, पांच ज्ञान व नव दर्श० और पांच अन्तराय एवं ४७ ध्रुवबंधी ॥ (जिस गु० तक जिस प्रकृति का बन्ध हो उस गु० तक वह प्रकृति का नित्य अवश्य बंध हो उसको ध्रुवबंधी कहते हैं। एवं उदय, सत्तादि भावनियम्)॥२॥ अध्रुवबंधी ७३॥ तीन शरीर, तीन उपांग, छे संस्थान, छे संघयण, पांच जात, चारगति, दो विहायोगति, चार आनुपूर्वी, जिननाम, स्वासोस्वास, उद्योत, आतप, पराघात, त्रसवीसक, दो. गोत्र, दो वेदनी ॥ ३ ॥

हासाई जुअल दुग वेअ आउ तेवुत्तरी अधुवबंधी,
भगा अणाइ साइ अणंत संतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥
पढम बिआ धुवउदइसु धुवबंधिसु तइअवज्ज भगतिग ॥
मिच्छंमि तिन्निभगा दुहावि अधुवातुरिअ भगा ॥ ५ ॥
निमिण थिर अथिर अगुरुअ सुह असुह तेअ कम्म चउवन्ना ॥
नाणंतराय दंसण मिच्छं धुव उदय सगवीसा ॥ ६ ॥
थिरसुभियर विणु अधुवबंधी मिच्छ विणु मोह धुवबंधी ॥
निद्दोव घाय मीस सम्मं पण नवइ अधुवुदया ॥ ७ ॥

हास्यादि दो युगल, तीन वेद और चार आयुष एवं ७३ अध्रुवबंधी प्र० है ॥ ध्रुवबंधी आदि चारों का सादि अनादि चारकं भागे कहना ॥ ४ ॥ ध्रुवोदयी प्र० में पहला और दूसरा भागा ध्रुवबंधी प्र० में तीसरा भागा वर्ज के शेष १–२–४ भागा होते हैं ॥ मिथ्यात्व मोहनीय विषे तीन भागें और दोनों प्रकार की अध्रुव प्र० में चौथा भागा होता है ॥ ५ ॥ ध्रुवोदयी २७ निर्माण, स्थिर, अस्थिर अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, पांच ज्ञानाव० पांच अ तराय, चार दर्श० और मिथ्यात्व मोहनीय एवं २७ ध्रुवोदयी ॥ ६ ॥ अध्रुवोदयी ६२ स्थिर, शुभ इतर अस्थिर, अशुभ एवं ४ विना शेष अध्रुवबन्धी ६९ प्र० मिथ्यात्व विना मोहनीयकर्मको १८ प्र० ध्रुवबन्धी, निद्रा, उपघात, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय एवं ९५ प्र० अध्रुवोदयी ॥ ७ ॥

---

(१) अनादि अनन्त, (२) अ० सान्त, (३) सादि, अनंत (४) सादि सान्त

तस[20] वन्नवीस[20] सग[7] तेअ कम्म धुवबंधी[41] सेस वेअतिगं[3] ॥

आगिइतिग[17] वेअणिअं[2] दुजुअल[4] सगउरल[7] सासचउ[4] ॥ ८ ॥

खगइ[2] तिरिदुग[2] नीअं[1] धुवसत्ता[130] सम्म[1] मीस[1] मणुयदुगं[2] ॥

विउव्विक्कार[11] जिणा[1] उ[4] हारस[7] गुच्चा[1] अधुवसत्ता[28] ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेसु मिच्छं निअमा अजयाइ अट्ठगे भज्जं ॥

सासाणे खलु सम्मं संतंमिच्छाइ दसगेवा ॥ १० ॥

सासण मीसेसु धुवं मीसं मिच्छाइ नवसु भयणाए ॥

आइदुगे अणनिअमा भइआ मीसाइ नवगंम्मि ॥ ११ ॥

ध्रुवसत्ता १३० ॥ त्रसबीस, वर्णादिबीस, तेजस सप्तक बिना (५ तेजस कार्मण बन्धन और तेजस संघातन, कार्मण संघातन) शेष ४१ ध्रुवबन्धी, तीनवेद, आकृति त्रिक (छे संघयण, छे संस्थान, पांच जाति) दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, औदारिक सप्तक (औदा० शरीर[1] औ० अंगो,०[2] औ० संघा,०[3] औ० औ० बंधन[4], औ० ते,०[5] औ० का,०[6] औ० ते० का०[7]) स्वास चतुष्क (उस्वास, उद्योत, आतप, पराघात) ॥८॥ दो विहायोगति, तिर्यंच द्विक और नीचगोत्र एवं १३० ध्रुवसत्ता ॥ अध्रुवसत्ता २८ ॥ सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मनुष्यद्विक, वैक्रिय एकादश, जिननाम, चार आयुष, आहारक सप्तक, और ऊचगोत्र एवं २८ प्र० अध्रुवसत्ता ॥ ९ ॥ गु० ध्रुवसत्ता ॥ प्रथम के तीन गु० में नियमा मिथ्यात्व मोहनीय होती है, अविरत्यादि आठ गु० मे भजना ॥ सास्वादन गु० में सम्यक्त्व मो० नियमा होती है, मिथ्यात्वादि दश गु० में सम्य० मो० विकल्प से होती है ॥ १० ॥ सास्वादन और मिश्र गु० में मिश्र मो० ध्रुव होती है. मिथ्यात्वादि ध्रुव गु० में विकल्प से होती है पहिले के दो गु० में अनन्तानुबंधी कषाय नियमा होता है, मिश्रादि नव गु० में भजना से होता है ॥ ११ ॥

आहारग सतग वा सव्वगुणे बितिगुणे विणा तित्थ ॥
नोभयसते मिच्छो अ त मुहुत भवे तित्थे ॥१२॥

केवल जुयला वरण पण निद्दा बारसाइम कसाया ॥
मिच्छ ति सव्वघाई चउनाण ति दसणा वरणा ॥१३॥

सजलण नोकसाया विघं इय देसघाइय अघाइ ॥
पत्तेय तणुड हाऊ तसवीसा गोअ दुग वन्ना ॥१४॥

आहारक सप्तककी सत्ता सब गु० में विकल्प से होती है॥ दूसरे और तीसरे गु० विना बाकी सब गु० म तीर्थंकर नामकी सत्ता विकल्प से होती है ॥ आहारक सप्तक और जिन नामकी सत्ता होने पर मिथ्यात्वी नहीं होता ॥ तीर्थंकर नामकी सत्ता होते हुवे अन्तर मुहुर्त मिथ्यात्व गु० होता है क्यों कि क्षयोपशम को वमके नर मे जाता हुवा अन्तर मुहूर्त मिथ्यात्व को स्पर्शी फिर तुरत सम्यक्त्व प्राप्त करे ॥१२॥ सर्व घाती २० "केवलद्विक आवरण, पाच निद्रा, प्रथम के बारह कषाय और मिथ्यात्वमोहनीय एव २० प्र० सर्वघाती हैं" ॥ देशघाती २५ "चार ज्ञानाव० तीन दर्शनाव० सज्वल कषाय ४, नवनोकषाय और पाच अन्तराय एव २५ प्र० देशघाती है" ॥ अघाती ७५ "आठ प्रत्येक प्र०, शरीर अष्टक की ३५ प्र०, चार आयुष्य त्रसवीस, दो गोत्र, दो वेदनी, और वर्णचतुष्क एव ७५ प्र० अघाती है" ॥१३॥१४॥

सुरनर ति गुच्च सायं तसदस तणु वंग वइर चउरंसं ॥
परघामग तिरिआउ वन्नचउ पणिंदि सुभखगइ ॥१५॥
बयालपुण्णपगइ अपढमसंठाण खगइ संघयणा ॥
तिरियदुग असाय निओवघाय इग विगल निरयतिगं ॥१६॥
थावर दस वन्न चउक्क घाइ पणयाल सहिय बासीइ ॥
पाव पयडित्ति दोसुवि वन्नाइ गहा सुहा असुहा ॥१७॥
नामधुवबंधीनवगं दंसण पण नाण विग्घ परघायं ॥
भय कुच्छ मिच्छ सासं जिण गुण तीसा अपरिअत्ता ॥१८॥

पुन्य प्र० ४२ "देवत्रिक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र सातावेदनी, त्रसद शक, पांच शरीर, तीन उपांग, वज्र रुषभनाराच संघयण, समचतु रस्र संस्थान, पराघात, उस्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थंकर, निर्माण यह सप्तक, तिर्यंचायु, वर्णचतुष्क, पचेन्द्रिय, शुभ विहायो गति, एवं ४२ पुन्य प्र० है ॥ पाप प्र० ८२ "पांच संस्थान, अशुभ विहायोगति पांच संघयण, तिर्यंचद्विक, असाता वेदनी, नीच गोत्र, उपघात, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नरकत्रिक, स्थावरदशक, वर्णचतुष्क, सर्वघाती २० प्र० देशघाती २५ प्र० एवं ८२ पाप प्र० है" ॥ वर्णचतुष्क पाप और पुन्य दोनों में लिया है वह पाप में अशुभ और पुन्य में शुभ समझना ॥१५-१६-१७॥ अपरावर्त्तमान प्र० २९,, नामकर्मकी ध्रुवबंधीनो प्र० (वर्ण ४, तेजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात) दर्शनावर्ण चतुष्क, पांच ज्ञानावरणीय, पांच अन्तराय, पराघात, भय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व, उस्वास और जिन नाम एवं २९ प्र० अपरावर्तमान है अर्थात् उसके बंध और उदय में अन्य प्रकृतिका बंध उदय नहीं रुकता इसलिये इसको अपरावर्तमान प्रकृति कहते हैं ॥१८॥

तणुअठ वेअ दुजुअल कसाय उज्जोअ गोअदुग निद्दा ॥
तसवीस आउ परित्ता खित्त विवागाणुपुव्वीओ ॥ १९ ॥
घणघाइ दुगोअ जिणा तसि परतिग सुभग दुभग चउ सास ॥
जाइतिग जिअ विवागा आऊ चउरो भव विवागा ॥ २० ॥
नाम धुवोदय चउतणु वघाय सहारणिर जोअतिग ॥
पुग्गल विवागिब धो पयइठिइ रस पएसत्ति ॥ २१ ॥

परावर्तमान प्र० ९१ "शरीर अष्टक की ३३ (तेजस कार्मण बिना, तीन शरीर, तीन उपांग, छे संस्थान, छे संघयण, पांच जाति, चार गति दो खगति, चार आनुपूर्वी) प्रकृति, वेद तीन, हास्यादि चार, १६ कषाय उद्योत आतप, गोत्र दो वेदनीदो, पांच निद्रा, त्रसदशक, स्थावर दशक आयुष्य चार, एवं ९१ प्र० परावर्तमान है ॥ यह प्रकृतियाँ अन्य प्रकृति योंके बंध उदय को निवार के अपना बंध उदय स्थापन करती है, इसमें १६ कषाय और पांच निद्रा एवं २१ केवल उदय परावर्तमान है और स्थिर, अस्थिर, शुभ अशुभ, यह ४ प्र० केवल बंध परावर्तनमान है शेष ६६ प्र० उदुभय परावर्तमान है ॥ क्षेत्र विपाकी चार आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी है ॥ १९ ॥ जीवविपाकी ७८" घन घाती ४७ (५ ज्ञान, ९ दर्शन। २८ मोहनीय, ५ अंतराय) गोत्र द्विक, वेदनी दो, जिननाम, त्रस त्रिक, स्थावरत्रिक, सुभग चतुष्क, दुर्भग चतुष्क, स्वासोश्वास, जातित्रिक, (५ जाति ४ गति, दो खगति,) एवं ७८ जीवविपाकी है ॥ भव विपाकी - चार आयुष्य भव विपाकी है ॥ २० ॥ पुद्गल विपाकी ३६,, नाम कर्म की ध्रुवा दयी १२ (निर्माण, स्थिर अस्थिर, अगुरु० शुभ, अशुभ, तेजस कर्मण, वर्ण चार) शरीर चतुष्क (३ शरीर, ३ उपांग, छे संघ०, छे संस्थान) उपघात, साधारण, प्रत्येक, उद्योतत्रिक (उ० आ० प०) एवं ३६ प्र० पुद्गल विपाकी है ॥

२३ २५ २६ २८ २९ ३० ३१ १
ति पण छ अट्ठ नवहिआ वीसा तीसेग तीस इग नामे ॥
६ ७ ७ ३
छ स्सग अट्ठति बंधा सेसेसु यठाण मिक्किक्कं ॥२५॥

नामकर्म की प्रकृति के बन्ध स्थान आठ हैं। २३-२५-२६-२८ २९-३०-३१-१ जिसमें छे भूयस्कार, सात अल्पतर, आठ अवस्थित और तीन अवक्तव्य बन्ध हैं। शेष कर्मो का एक एक ही बन्ध स्थान है। विवेचनः-- नाम कर्म की ६७ प्र० हैं (विपाक गंथा ३१ जिसमें पहला २३ का बन्ध यथा वर्ण ४ तै० का० अगु० निर्मा० उप० तिर्यंच, एके०, औ० शरीर, हुंड०, स्था०, अपर्या०, अस्थि०, अशु०, दुर्भ०, अना०, अशय, सूक्ष्म या बादर, साधारण या प्रत्येक यह पहला बंध स्थान। यह एकेंद्रिय प्रायोग्य, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी बांन्धे १ पूर्वोक्त २३ में से नं० १६-१७-१८-११ को निकालके प्रतिपत्ति मिलावे और उस्वा० परा० मिलाने से २५ का दुसरा बंध स्थान पर्याप्ता एकेन्द्रिय और अपर्याप्ता बेरिन्द्रि प्रायोग्य होता है ॥२॥ उद्योत या आतप मिलाने से २६ का बंध स्थान पर्याप्ता एकेंद्रिय बांधे ॥३॥ नौ० २ देव० २, पचें०, सम०, उस्वा०, परा०, शुभगति, त्रस, बादर, पर्या०, प्रत्ये०, अस्थि०, अशु, अशय, (या १४-१५-१६ की प्रतिपत्ति) सौभा०, सुस्वर, आदेय, और नव ध्रुवबंधी एवं २८ का बंधस्थान देवता या प्रथम के चार गु० वाले मनुष्य, तिर्यंच बांधते है ॥४॥ जिन नाम मिलाने से २९ का बंध स्थान अविरति सम्य० मनु० देव० में होता है ॥ अथवा पूर्वोक्त २५ में खगति, संघयण, संस्थान, औदारिकोपांग मिलावे और एकेंद्रिय की जगह पंचेंद्रिय और स्थावर की जगह त्रस मिलाने से २९ का बंध स्थान पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंचको होता है ॥५॥ पूर्वोक्त २८ में आहारक द्विक मिलाने से ३० का बन्ध स्थान अप्रमत संय-

तको होता है तथा वज्रऋषभ० जिन नाम मिलाके और देवद्विक की जगह मनुष्यद्विक मिलाने से ३० का बध स्थान देवता मनुष्य प्रायोग्य बाधे ॥६॥

पूर्वोक्त ३० के बध स्थान में जिन नाम मिलाने से ३१ का बन्ध स्थान देवप्रायोग्य ७-८ गु० वाला बाधे ॥७॥ और अपूर्व करणादि तीन गु० में रहा हुवा साधु एक यश कीर्ति बाधे यह १ का बध स्थान ॥८॥ छे भूयस्कार कहा सो १ का बध स्थान श्रेणी से गिरते होता है इस लिये भूय० नहीं होता । अवक्तव्यबध पहली श्रेणी से गिरता एक यश कीर्ति बाधे वह और दुसरा सप श्रेणी में काल करके देवता में पहले स में ३० प्र० बाधे वह । एव

उत्तर प्र० के बन्धस्थान और भूयस्कारादि यत्र,

	ज्ञान	दर्श	वेद	मोहनी	आयु	नाम	गोत्र	अन्त
उत्तर प्रकृति	५	९	२	२६	४	६	२	५
बधस्थान	१	३	१	१०	१	८	१	१
बधस्थान में कितनी प्रकृतिया	५	९ ६ ४	१	२२ २१ १७ १३ ९ ५ ४ ३ २ १	१	२३ २५ २६ २८ २९ ३० ३१-१	१	५
भूयस्कार	०		०	९	०	६	०	०
अल्पतर	०		०	८	०	७	०	०
अवस्थित	१		१	१०	१	८	१	१
अवक्तव्य	१		०	२	१	३	१	१

२ और कोइ जिन रहित नाम २९ बाधे यह तीजा अवक्तव्यब है ॥२५॥

वीसयर कोडी कोडि नामे गोए सत्तरी मोहे ॥
तीसियर चउसु उदही निरय सुराउमि तितीसा ॥२६॥

मुत्तु अकसाय ठिइ बार मुहुत्ता जहन्न वेअणिए ॥
अट्ठ नाम गोएसु सेसएसु मुहुत्तंतो ॥२७॥

५ १४ १
विग्घा वरण असाए तीसं अट्ठार सुहुम विगलतिगे ॥
पढमागिइ संघयणे दस दुसुवरि मेसु दुगवुड्ढी ॥२८॥

उत्कृष्ट स्थिति बंध ॥ नाम और गोत्र कर्म की उ० स्थिति वीस कोडा कोडी सागरोपम की है ॥ मोहनीय कर्म की ७० कोडा-कोडी सागर और शेष चार कर्मों की स्थिति ३० कोडा कोडी सागरोपम की है । नारकी और देवता के आयुष्य की स्थिति ३३ सागरोपम की है ॥२६॥ ज० स्थिति बंध ॥ अकषायी को, छोडके (सकषायी) वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है ॥ नाम और गोत्र कर्म की जघन्य आठ आठ मुहूर्त की स्थिति है शेष पांच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त की है ॥२७॥ उत्तर प्र० का ऊ० स्थिति बंध ॥ पांच अन्तराय ज्ञा० द० के चौदह आवरण और शाता वेदनीय उ० स्थिति बंध तीस कोडा कोडी सगरोपमका है । सूक्ष्मत्रिक और विकलेन्द्रियत्रिक की स्थिति अठारह कोडा कोडी सागरोपम, पहला संघयण पहला सस्थान की स्थिति दश कोडा कोडी सागरोपम और उपर के संस्थान तथा संघयण दो दो में दो दो कोडा कोडी सागर की स्थिति वधा देना जैसे न्यग्रोध, रूपभना० १२ कोडा कोडी सादि नाराच १४ कोडा कोडी कुब्ज, अर्ध नाराच १६ कोडा कोडी, वामन कीलिका १८ कोडा कोडी हुंडक और छेवट वीस कोडा कोडी सागरोपम ॥२८॥

१६ , १ १ १ १ १ १ १
चालीस कसाएसु मिउ लहु निध्धुण्ह सुरहि सिय महुरे ॥
दस दोसड्ढ समहिआ ते हालिद्द बिलाइण ॥२९॥
दस सुहविहगइ उच्चे सुर दुग थिरछक्क पुरिस रइ हासे ॥
मिच्छे सत्तरी मणुदुग इत्थी साएसु पन्नरस ॥३०॥
१ १ १ १ ० ० २ १
भय कुच्छ अरइ सोए विउव्वि तिरि उरल निरय दुग निए ॥
१ ६ ४ १ १ १
तेअपण अथिर छक्के तस चउ थावर इग पणिदी ॥३१॥
नपु कुखगइ सास चउगुरु कक्खड रुक्ख सीय दुग्गंधे ॥
वीस कोडा कोडी एवइ आबाह वास सया ॥३२॥

सोलह कषाय की उ० स्थिति चालीस कोडा कोडी साग० मृदु-लघु, स्निग्ध, उष्ण, सुरभिगंध, श्वेत वर्ण, और मधुररस की दस कोडा कोडी साग० और पीत वर्ण तथा अम्लरस की १२॥ कोडी कोडी सागरोपम की उ० स्थिति है ॥२९॥ शुभ विहायो गति, ऊंच गोत्र, सुरद्विग, स्थिरषट्क, पुरुष वेद, रति और हास्य का दस कोडा कोडी साग० मिथ्यात्व ७० कोडा कोडी साग० मनुष्य द्विक, स्त्री वेद, और सातावे० की उ० स्थिति १५ कोडा कोडी सा० की है ॥३०॥ भय, जुगुप्सा, अरति, शोक, वैक्रियद्विक, तिर्यंचद्विक, औदा, द्विक, नरकद्विक नीच गोत्र, तेजस पचक, (ते० का० अगु० निर्मा० उप०) अस्थिरषट् (अस्थिर, अशुभ दुर्भग, दुःस्वर, अना० अयश) त्रस चतुष्क (त्रस बादर, पर्याप्त प्रत्येक) स्थावर एकेंद्रिय और पचेंद्रिय जाति ॥३१॥ नपुसक वेद, अशुभ विहायो गति, श्वास चतुष्क उश्वास, उद्योत, आतप, पराघात) गुरु कर्कश, रुक्ष, शीत, दुर्गंध, की उ० स्थिति बीस कोडा कोडी सागरोपम की है ॥ जितने कोडा कोडी सागरोपम की स्थिति है, उतने सो वर्ष का अबाधा काल समझना ॥३२॥

गुरु कोडी को डीअंतो तित्था हाराण भिन्न मुहुबाहा ॥
लहु ठीइं संखगुणूणा नरतिरि आणाउ पल्लतिंग ॥ ३३ ॥
इगविगल पुव्व कोडी पलिआसंखंस आउ चउ अमणा
निरुवकमाण छमासा अबाह सेसाण भवतसो ॥ ६४ ॥

लहु ठिइ बंधो संजलण लोह पण विग्घ नाण दंसेसु ॥
भिन्न मुहुत्तं ते अठ जसुच्चे बारस य साए ॥ ३५ ॥

तीर्थंकर नामकर्म की और आहारक द्विक की उ० स्थिति अतः कोडाकोडी अर्थात् एक कोडाकोडी से कुछ न्यून की होती है . और आवाधा काल अन्तर मुहुर्त का है ॥ आठों कर्मो की जघन्य स्थिति असं ० गुणहीन अत कोडाकोडी सा० की है. मनुष्य और तिर्यंच का आयुष्य उ० तीन पल्योपम है ॥ ३३ ॥ आगामि भव का आयुष्य ॥ एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय पूर्वकोटी वर्ष का आयुष्य बाधे । और असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त चारों गति का आयुष्य पल्योपम के असख्य भाग बांधे । निरुपकों आयुष्यवाले को छे मास का अबाधाकाल होता है. शेष जीवों को भव का तीसरा भाग आबाध काल होता है ॥ ३४ ॥ उत्तर प्र० का जघन्य स्थितिबंध ॥ संज्वल लोभ, ५ अनंत, ५ ज्ञाना०, ४ दर्शना की जघन्य स्थिति अन्तर मु० की होती है, । यश नाम. ऊंच गोत्रकी मु० ज० स्थिति और साता वेदनीय की १२ मु० की ज० स्थिति है (इनसब १८ प्र० का जघन्य बंध नौवे गु ० के अंत या दश में गु० होता है.) ॥ ३५ ॥

दो इग मासो पक्खो सजलण तिगे पुमट्ठ वरिसाणे ॥
सेसाणु कोमाओ मिच्छत्तठिइए ज लद्ध ॥३६॥

अयमुक्कोसो गिदिसु पलिया सखस हीण लहुबधो ॥
कमसो पण वीसाए पन्नासय सहस्स सगुणिओ ॥३७॥

संज्वलनत्रिकका अनुक्रम से दो महिना, एक महिना, एक पक्ष का ज० स्थितिबन्ध है और पुरुषवेदका ज० आठ वर्ष यह जघन्य स्थितिबध नोमे गु० में अपनी ७ बध प्र० के विच्छेद समये होता है ॥शेष ८५ प्र० को उत्कृष्ट स्थिति को मिथ्यात्व से भाग देने पर जो लब्ध सख्या आवे वह ज० स्थितिबंध समझना (इन ८५ प्र० का जघन्यबध एकेन्द्रिय मे होता है यथा-मिथ्यात्वका स्थितिबध एक कोडा कोडी सागरोपम का है असाता और निद्रा ५ का स्थितिबध सागरोपम का सातीया तीन भाग अर्थात् ३/७ बारहकषाय ४/७ मनुष्यद्विक स्त्रीवेद १/१४ इत्यादि उत्कृष्ट स्थिति परसे समझ लेना एव १०१ शेष १३ प्र० वैक्रिय अष्टक, जिन, आहारक २ मनुष्य तिर्यचायु का ज० स्थिति बध अलग कहेंगे) ॥३६॥ पूर्वोक्त स्थितिबध एकेन्द्रिय में उत्कृष्ट समझना ज० पल्योपमके असं० भागहीन कहना (एव ८५ प्र० का ज० उ० स्थिति बध एकेन्द्रिय म कहा शेष ज्ञा० ५, दर्श० ४, अन्त० ५, की उ० स्थि० ३/७ सातावेदनी १/१४ यश, ऊचगोत्र ३/७ पुरुषवेद ३/७ सज्वलकषाय ४/७ और दो आयुष्य की पूर्व कोड़ की स्थिति बांधे यह उ० स्थिति ज० स्थिति पल्योपम के असं० भागहीन परन्तु दोना आयुष्य की ज० स्थिति क्षुल्लक भव प्रमाण समझना एव १०६ प्र० का बध एकेन्द्रिय में है जिसका ज० उ० स्थितिबध कहा) ॥३७॥

विगल[3] असन्निसु[1] जिट्ठो कणिट्ठओ पल्ल संखभागूणो ॥
सुरनिरयाउ समा दस महस्स सेसाउ खुड्ड भवं ॥३८॥
सव्वाण विलहु बंधे भिन्न मुहू अबाह आउजिट्ठे वि ॥
केइ सुराउसमं जिणमंत मुहु विंति आहारं ॥३९॥
सत्तरस समहिआ किर इगाणु पाणुंमि हुंति खुड्ड भवा ॥
सगतीससय तिहुत्तर पाणु पुण इग मुहुतंमि ॥४०॥
पणसठि सहस पण सय छत्तिमा इगमहुत्त खुड्ड भवा ॥
आवलिआण दोसय छप्पन्ना एग खुड्ड भवे ॥४१॥

विकलेन्द्रिय में और असंज्ञि पंचे० में अनुक्रम से. २५-५० १००-१००० गुणस्थितिबंध एकेन्द्रिय से अधिक कहना (और उ० से ज० पल्योपम के असं० भागहीन कहना. परतु असंज्ञि में ११७ प्र० का बंध है सो शेष प्र० का बंध एकेन्द्रियवत् भाग निकाल लेना और आयुष्य की स्थितिबंध देवता और नारकी कि ज० दश हजार वर्ष कहना. मनुष्य, तिर्यंचकी ज० स्थि० क्षुलक भव प्रमाण कहना) ॥३८॥ सर्व प्र० का ज० स्थितिबंध का अबाधाकाल अन्तर मुहुर्तका होता है. आयुष्य की उ० स्थितिबंधका भी अबाधाकाल अन्तर मुहुर्तका होता है ॥ कितनेक आचार्यों का मत है कि देवता के आयुष्य जितनी जिन नाम कर्म की जघन्यस्थिति, है. जिन नाम कर्म बाधने के पीछे देवता का एक पल्योपम अथवा नारकी का दश हजार वर्ष का जघन्य भव करके तीर्थंकर होते हैं और आहारकद्विक की अन्तर मुहुर्त की ज० स्थिति कहते हैं ॥३९॥ एक स्वासोस्वास मे साधिक सतरह क्षुल्लक भव होते हैं ॥ एक अन्तरमुहुर्त में ३७७३६ स्वासोस्वास होते हैं ॥४०॥ एक अन्तर मुहुर्त में ६५५३६ पैंसट हजार पांचसो छत्रीस क्षुलक भव होते हैं ॥ एक क्षुलक भव २५६ आवलीका होता हैं ॥४१॥ उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थितिबन्धस्वामी कहते हैं ॥

अविरय सम्मोतित्थ आहार दुगामराउ य पमत्तो ॥
मिच्छ दिट्ठी बंधइ जिट्ठ ठिइ सेस पयडीण ॥
विगल सुहु माउगतिग तिरि मणुआ सुर विउव्वि निरय दुग ॥
एगिंदि थावरा यव आईसाणा सुरुक्कोस ॥ ४३ ॥
तिरि उरल दुगुज्जोअं छिवट्ठ सुरनिरय सेस चउगइआ ॥
आहार जिणमपुव्वो ऽनिअट्टि संजल पुरिसलहुं ॥ ४४ ॥
सायजसुच्चा वरणाविग्घ सुहुमो विउव्वि छ असन्नि ॥
सन्नि विआउ बायर पज्जेगिंदिउ सेसाण ॥ ४५ ॥

जिन नाम कर्मका उ० स्थितिबंध अविरति सम्य और आहारकद्विक और देवआयु का प्रमत्त संयत है शेष ११६ प्र० का उ० स्थितिबंध मिथ्यात्वी को होता है (यह उत्कृष्ट स्थितिबंध अति संक्लिष्ट परिणामों से होता है परंतु देवायु मनुष्यायु तिर्यंचायु अति विशुद्ध परिणामों से बंधता है) ॥ ४२ ॥ विकलेन्द्रिय ३, सूक्ष्म ३, आयुष्य ३ (देवायु वर्जके) सुरद्विक, वैक्रिय २ और नरकद्विक एवं १५ प्र० का उ० स्थितिबंध मिथ्यात्वी तिर्यंच और मनुष्य को होता है ईसानपर्यंत के देवता और एकेन्द्रिय स्थावर आतप नामकर्म का उ० स्थिति बंध बांधते हैं ॥४३॥ तिर्यंच २, औदारिक २, उद्योत और छेवट्ठ संघयण को देवता और नारकी उ० स्थिति से बांधते हैं ॥ शेष २६ प्र० चारों गति वाले मिथ्यात्वी उ० स्थिति से बांधते हैं ॥ अपूर्व करण गु० में क्षपक श्रेणीवाला जीव आहारक द्विक और जिन नाम की ज० स्थिति बांधे । अनिवृत्ति बादर संपराय वाला जीव संज्वल कषाय और पुरुष वेदका ज० स्थिति बंध करे ॥ ४४ ॥ सूक्ष्म संपराय गु० वर्ती जीव सातावेदनीय, यश नाम ऊंच गोत्र, नव आवरण और पांच अंतराय को ज० स्थिति से बांधे ॥ पर्याप्ता असंज्ञि पंचेन्द्रिय तिर्यंच वैक्रिय षट्का ज० स्थिति बंध करे ॥ संज्ञि और असंज्ञि पंचेन्द्रिय चारों प्रकार के आयुष्य को ज० स्थिति में बांधे ॥ शेष ८५ प्रकृति का ज० स्थिति बंध बादर पर्याप्ता एकेन्द्रिय जीव बांधते हैं ॥ ४५ ॥

उक्कोस जहन्नेअर भंगा साइ अणाइ धुव अधुवा ॥
चउहासगअजहन्नो सेसतिगेआउचउसुदुहा ॥ ४६ ॥
चउभेओअजहन्नो संजलणा वरण नवग विग्घाणं ॥
सेसतिगिसाइ अधुवो तह चउहासेस पयडीणं ॥ ४७ ॥

उत्कृष्ट, जघन्यबंध अनुकृष्टबंध और अजघन्य बंध एवं ४ भांगे अथवा सादिबंध, अनादिबंध ध्रुवबंध और अध्रुव बंध यह भी चार भांगे हैं ॥ सात मूल प्र० विषय ज० बंध ४ प्रकार का है. बाकी के तीन बंध में. सादि और अध्रुव यह दो प्रकार के बंध हैं ॥ आयुष्य के उत्कृष्टादि ४ भांगों मे सादि और अध्रुव यह दो भांगे होते हैं ॥ ४६ ॥ सञ्ज्वलन कषायनव आवरण और पांच अन्तराय संबंधी अजघन्यबंध चार भेद से हैं. और इन्हीं प्रकृत्तियोंके शेष तीनबंध विषय सादि और अध्रुवबंध दो भांगे हैं ॥ बाकी १०२ प्रकृत्ति के जघन्यादि चार भांगा में सादी और अध्रुव दो भागे हैं ॥

विवेचन—संज्वल कषाय ४, ज्ञाना० दर्श० आवरण ६ और ५ अंतराय एवं १८ प्र० का अजघन्य बंध चार प्रकार है। यथा- उपशम श्रेणी वालों को पूर्वोक्त १८ प्र० का अजघन्यबंध होता है. वह उपशांत मोहावस्था में अबन्ध होके. गिरता हुआ अजघन्य बांधे उसे सादी कहते हैं ॥ १ उपशांतमोह अवस्था के पहिले वे प्रकृत्तियां कभी विच्छेद नहीं हुई इसलिये अनादि २ ॥ अभव्य इन प्रकृतियों का अन्त नहीं करता इसलिये ध्रुव ३ और भव्य करेगा इसलिये अध्रुव है ४, पूर्वोक्त १८ प्र० का शेष जघन्य १ उत्कृष्ट २ अनुत्ककृष्ट एवं तीन बंध विषय सादि, अध्रुव दो भांगे हैं ॥ क्षेपक श्रेणी मे अपने अपने बंधविच्छेद समय पहिले जघन्यबंध होता है. वह प्रथम ही हुआ है। इसलिये सादि आगे अबन्धक होगा इसलिये अध्रुव, उत्कृष्ट बंध सज्ञि पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी करता है। वह अन्तर मुहुत रह कर पीछे फिर अनुत्कष्ट बन्ध करता।पना है इस तरह चढते उतरते की अपेक्षा से इन दो भांगों को सादि अध्रुव-होता है ॥ एवं शेष१०२ प्र० के भांगों को स्व बुद्धि से विवचा लेना॥४७॥

साणाइ अपूव्वंते अयरंतो कोडि कोडिओ नहिगो ॥
बंधोनहु हीणो नय मिच्छे भव्विअरसन्निमि ॥४८॥

जइलहुबंधो बायर पज्ज असंखगुण सुहुमपज्जहिगो ॥
एसिअपज्जाणलहु सुहुमअर अपज्ज पज्जगुरु ॥४९॥

लहु बिअ पज्ज अपज्जे अपज्जे अर बिअ गुरुहिगो एवं ॥
ति चउ असन्निसु नवरं संख गुणो बिअ अमण पज्जे ॥५०॥

सास्वादन से यावत् अपूर्व करण गु० पर्यंत अंत कोडा कोडी सागरोपम से अधिक बंध नहीं होता (उ० ७० आदि कोडा कोडी सागर का बंध केवल मिथ्यात्व गु० में होता है) और न अंत कोडा कोडी सा० से कम होता है। तथा मिथ्यादृष्टि भव्य और अभव्यसंज्ञि पचेंद्रिय में भी इससे हीनबंध नहीं होता ॥४८॥ सबसेस्तोक यतिका जघन्य स्थितिबंध, १ बादर पर्याप्ता एकेंद्रियका ज० स्थितिबंध असं० गुण, २ सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्ता का ज० स्थि० विशेषाधिक, ३ बादर सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्ता का जघन्य स्थितिबंध विशेषाधिक, ४ सूक्ष्म अपर्याप्ता एकेंद्रिय का उ० स्थि० विशे० ६ बादर अपर्या० एके० उ० स्थि० विशे० ७ सूक्ष्म पर्या० एके० उ० स्थि० विशे० ८ बादर पर्या० एके० उ० स्थि० विशे० ९ बेइंद्रिय पर्या० ज० स्थि० बं० सं० गु० १०, बेइंद्रिय अपर्या०, ज० बं० विशे० ११ बेइंद्रिय अपर्या० उ० बं० विशे० १२ बेइंद्रिय पर्याप्ता उ० बं विशे० १३ तेइंद्रिय पर्या० ज बं० विशे १४ तेइं० अपर्या ज० बं० विशे० १५ तेइं० अपर्या उ० बं० विशे १६ तेइं० पर्या० उ० बं० विशे० १७ चौरिंद्रिय पर्या० ज० बं० विशे० १८ चौरिं० अपर्या० ज० बं० विशे० १९ चौरिं० अपर्या० उ० बं० विशे० २० चौरिं पर्या उ बं विशे० २१ असंज्ञि पचेंद्रिय पर्या० ज० बं, सं गु २२ अस पंचे अपर्या, ज बं, विशे

तो[२६] जइ जिट्ठो बंधो संख गुणो[२७] देस विरयहस्सिअरो[२८] ॥
सम्मचउ[३२] सन्नि चउरो[३६] ठिइ बंधाणुक्कम संख गुणा ॥५१॥

सव्वाणवि जिट्ठ ठिइ असुभाजं साइ संकिलेसेणं ॥
इअरा विसोहिओ पुण मुतुं नर अमर तिरि आउ ॥५२॥

सुहुम[१] निगोआइ खणप्प जोग बायरय[२] विगल[५] अमण[६] मणा ॥
अपज्ज[७] लहु पढम दुगुरु[९] पजहस्सि[११] अंगो[१३] असंख गुणो ॥५३॥

२३ अस० पंचें० अपर्या० उ० बं० विशे० २४ अस० पंचे० पर्या० उ० बं० विशे० २५ छट्ठे गुणस्थानक वर्ती साधुका उत्कृष्ट बंध सं० गुणों २६ देश विरतिका ज० बं० सं० गु० २७ देश विरतिका उ० बं० सं० गु० २८ चोथे गुण स्थानक पर्याप्ताका ज० बं० सं० गु० २९ अविरति अपर्या० ज० बंध सं० गु० ३० अविरति अपर्या० उ० बं० सं० गु० ३१ अविरति पर्या० उ० बं० सं० गु० ३२ संज्ञि पंचे० पर्या० ज० बं० सं० गु० ३३ संज्ञि पंचे० अपर्या० ज० बं० सं० गु० ३४ संज्ञि पंचे० अपर्या० उ० बं० सं० गु० ३५ संज्ञि पंचें० पर्या० उ० बं० सं० गु० ३६ ॥४९-५१॥ मनुष्य, देव, तिर्यंचायु वर्ज के शेष सब प्रकृतियों कि उत्कृष्ट स्थिति अशुभ (अप्रशस्त) जानना क्यों कि तीव्र कषायोदय से उत्कृष्ट बंध होता है, और जघन्य स्थिति बन्ध विशुद्धाध्यवसायों से होता है, ॥५२॥ सूक्ष्मनिगोद लब्धी अपर्याप्त का सबसे स्तोक योग १ इससे बादर निगोद अपर्या० ज० योग अस० गु० २ बेरिन्द्रिय अप० ज० योग अस० गु० ३ तेरि० अप० ज० योग अस० गु० ४ चौरि० अप० ज० योग अस० गु ५ अ-

१८ २० २८
अपजत्त तसुक्कोसो पज्जजहन्नि अरु एव ठिइ ठाणा ॥
अपजेअर भख गुणा परम अपज बिए असख गुणा ॥५४॥

संज्ञि पचेन्द्रिय अप० ज० योग अस गु० ६ सज्ञि पचें० पर्या० ज० योग अस० गु० ७ सूक्ष्मनिगोद अप० ज० योग अस गु० ८ बादर निगोद अप० ज० योग अस० गु० ६ सूक्ष्मनिगोद पर्या० ज० योग अस० गु० १० बादर निगोद पर्या० ज० योग अस० गु० ११ सूक्ष्मनिगोद पर्या० उ० योग अस गु १२ बादरनिगोद पर्या उ योग अस गु १३ बेरी अप उ योग अस० गु १४ तेरि अप उ योग अस गु १५ चौरी अप० उ० योग अस० १६ असंज्ञि पचें० अप० उ० योग अस० गु० १७ संज्ञि पचे० अपर्या उ० योग अस गु० १८ बेरी० पर्या० ज० योग अस० गु १६ तेरि० पर्या० ज० योग अस० गु० २० चौरि० पर्या० ज० योग अस० गु० २१ असंज्ञि पचे० पर्या० ज० योग अस० गु० २२ सज्ञि पचे० पर्या० ज० योग अस० गु० २३ बेरि० पर्या० उ० योग अस गु २४ तेरि पर्या उ योग अस गु २५ चौरि पर्या उ योग अस गु २६ असज्ञि पचें पर्या उ० योग अस० गु० २७ सज्ञि पचें० पर्या० उ० योग अस० गु० २८ अनुत्तर देवका उ० योग अस० गु० २६ ग्रैवेक देव उ० योग अस गु० ३० युगलीया उ० योग अस० गु० ३१ आहारक शरीर उ० योग अस० गु० ३२ शेष देव नारकी तिर्यंच मनुष्याणा यथो त्तरमुत्कृष्ट योग अस० गु० ॥३२॥ इसी तरह स्थिति स्थान भी कहना। परन्तु अपर्याप्ता से पर्याप्ता सख्यात गु० कहना परन्तु इतना विशेष है कि अपर्याप्ता बेरीं द्रो में अस ख्यात गुणा कहना ॥ ५४ ॥

पइखणं असंख गुण विरिअ अपज पइ ठिइ असंख लोग समा ॥
अज्झवसाया अहिआ,सत्तसु आउसु असंख गुणा ॥५५॥
तिरि[३] निरयति[३] जोआण[१०] नर भव जुअ सचउ पल्ल तेसट्ठ[१६३] ॥
थावर[४] चउ इग[१] विगला[३] यवेसु[१] पण सीइ सयमयरा[१८५] ॥५६॥
अपढ़म सघयणा[५] गिइ[५] खगइ अण[४] मिच्छ[=] दुमग[३] थीण[३] तिगं[३] ॥
निय[१]नपु[१]इत्थि[६] दुतीसं[३२] पणिंदिसु अबन्ध ठिइ परमा ॥५७॥

अपर्याप्ता जीवों को प्रति समय असं० गुण योग वृद्धि होती है. और प्रत्येक स्थितिबन्ध के असख्यांते लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अध्यवसाय होते हैं। सात कर्मो की स्थिति बन्ध के अध्यवसाय.विशेषाधिक होतेहै। यदा प्रथम ज. स्थिति के अध्यवसायअस.लाकाकाश.अस प्रदेश प्रमाण है. तत दूसरे समय की स्थिति सथानके अध्यवसाय विशेषाधिक ह एवंयावत उत्कृष्टस्थिति बंध पर्यन्त विशेषाधिक कहना परन्तु आयुष्य कर्मके अस.गु. कहना ॥५५॥ तिर्यंच त्रिक नरक त्रिक और उद्योत नाम कर्मका उत्कृष्ट अबाधा काल. मनुष्यके भवों सहित चार पल्योपम साधिक एकसो त्रेसट १६३ सागरोपम हैं। अर्थात इतने काल तक पूर्वोक्त ७ प्र. न बांधे॥ स्थावर चतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रिय और आतप नाम कर्मका. उ. अबाधा काल मनुष्य भवयुक्त चार पल्योपम साधिक १८५ सागरोपमका है॥५६॥ प्रथम का वर्जके शेष ५ संघयण, ५ संस्थान, विहायोगति, अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व मोहनीय, दुर्भाग्य त्रिक,थीणद्धि त्रिक, नीच गोत्र, नपुंसक वेद, और स्त्रि वेद एव २५ प्र. का उ. अबन्ध काल नरभवयुक्त एकसौ बतीस १३२ सागरोपम है। यह ४१ प्र. की अबन्धस्थिति पंचेन्द्रिय विषय होती है. शेष ७१ प्र. का अबन्घ काल दूसरे ग्रन्थसे लिखते हैं। दूसरा तीशरा कषाय ८ मनुष्य त्रिक ११ औदारिक द्रिक १३ और वज्र रुषभनाराच संघयण एव १४ प्र देशोन पूर्व कोटी तक संयत नहीं बांधते और शेष ५ प्र. का उ. अबन्ध काल अन्तर मुहुर्त है॥५७॥

१३२ १६३ १८५
विजयाइसु गेविज्जे तमाइ दहिमय दुतीस तेसठ ॥
२ २
पण सीइ सयय बंधो पल्ल तिग सुर विउव्वि दुगे ॥
२ १ ४
समयादसंखकाल तिरिदुग निएसु अउ अन्त मुहू ॥
उरलि असंख परट्टा साय ठिइ पुव्व कोडूणा ॥५९॥
१-५ १ १ १ ४
जलहिसय पणसीअ परघुस्सा से पणिदि तस चउगे ॥
१३२ १ ३ १
बत्तिस सुहविहगइ पुम सुभगति गुच चउर मे ॥६०॥
१ ४ ५ ५ २ २
असुखगइ जाइ आगिइ संघयणाहार निरयजोअ दुग ॥
१ १ १ १० १ १ ४ १
थिर सुभ जसथावर दस नपु इत्थी दुजुअल मसाय ॥६१॥

अब ध काल संख्या उपाय ॥ विजयादि अर्थात विजय २ वार और अच्युत ३ वार एवं १३२ सागर पूर्ण होता है ॥ ग्रैवेयक १ विजयादि २ अच्युत ३ वार एवं १६३ तम प्रभा १ ग्रैवेयक १ विजयादि २ और अच्युत तीन बार एवं १८५ सागरोपम मनुष्य भव युक्त होता है एवं २५-७-६ प का अनुक्रम से अबन्ध काल कहा ॥ अब ७३ अध्रुवबंधी ॥ का निरन्तर ब ध कहते है ॥ सुरद्विक वैक्रियद्विक का तीन पल्योपम तक उ निरन्तर ब ध युगलिया बांधे ॥ ५८ ॥ जघन्य एक समय से यावत् ७ असं॰ काल तक निरन्तर बन्ध तिर्यंचद्विक और नीचगोत्र का (तेउ वाउ, नारकी में होता है ॥ आयुष्य ४ का निरन्तर बंध अंतर मुहूर्त ॥ औदारिक शरीरका असंख्य पुद्गल परावर्त और सातावेदनीका निरन्तर देशोण पूर्वकोटी तक होता है ॥ ५९ ॥ पराघात, उश्वास, पंचेन्द्रिय जाति और त्रस चतुष्क विषय १८५ सागरोपमका निरन्तर बन्ध होता है शुभ विहायोगति, पुरुष वेद, सौभाग्यत्रिक, उच्चगोत्र और समचतुरस्र संस्थान विषय १३२ सागरोपम का निरन्तर स्थिति बंध होता है ॥६०॥ अशुभ विहायोगति, अशुभ जाति, अशुभ संस्थान ५, अशुभ संघयण ५ आहारक द्विक, नरकद्विक, उद्योत द्विक, स्थिर, शुभ, यश, स्थावर दशक नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, दोयुगल और सातना वेदनीय एवं ४१ ॥ ६१ ॥

समयादंतमुहुतं मणुदुग जिण वइर उरलुवंगेसु ॥
तित्तिसयरा परमा अंतमुहु लहुवि आउ जिणे ॥६२॥
तिव्वो असुह सुहाण संकेस विसोहिओ विवज्जयओ ॥
मंदरसो गिरि महिरय जल रेहा सरिस कसा एहिं ॥६३॥
चउठाणाइ असुहा सुहन्नहा विग्धदेसघाई आवरणा ॥
पुम संजलणिग दुति चउ ठाणरसा सेस दुगमाइ ॥६४॥

इन ४१प्र.का निरन्तर एक समय से यावत् अंतर मुहूर्त पर्यंत ज.बंध होता है ॥ मनुष्य द्विक, जिननाम, वज्ररुषभनाराच संघयण, और औदारिक अंगोपांगका ३३ सागरोपम का निरन्तर उ. बंध होता है ॥ और चार आयुष्य तथा जिननाम कर्मका जघन्य निरन्तर बंध अन्तर मुहुर्त होता है ॥६२॥ अनुभाग बंधः- अशुभ और शुभ प्रकृतियों का तीव्ररस अनुक्रम से संक्लिष्ट और विशुद्ध परिणामों से बंधता है। इसमें विपरितपने मंद रस बंधता है यह पर्वत, पृथ्वी, रेती और पानी की रेखा के समान कषायों से होता है ॥ ६३ ॥ उक्त कषायों से अशुभ प्र. का रस अनुक्रम से ४-३-२-१ स्थानिक बन्धता है और शुभ प्र. का इससे विपरितपने समझ लेना ॥ शुभ प्र. का एक स्थानिक रस नहीं होता इसलिये कौनसी प्रकृति कितने प्रकार के रस बांधे वह बतलाते हैं। पांच अन्तराय देशघाति आवरण ७ (४ ज्ञा० ३ दर्श०) पुरुष वेद, और सञ्वल कषाय ४ एवं १७ प्रकृति १ - २ - ३ - ४ स्थानिक रस से बन्धती है. (इनका एक स्थानिक रस अनिवृत्ति बादर गु० के सख्याते भाग व्यतीत होने पर होता है) शेष १०३ प्रकृति का २-३-४ स्थानिक रस होता है। एक स्थानिक रस नहीं बन्धता क्योंकि एक स्थानिक रस अनिवृत्ति बादर गु० में होता है. और वहा इन सब प्रकृतियों का बंध विच्छेद हो जाता है केवल ज्ञानावर्णादि ५ प्र० का बन्ध विच्छेद यहां नहीं होता वे प्र० एक स्थानिक रस बंध की नहीं है ॥ ६४ ॥

निंबुच्छुरसो सहजो दुति चउभाग कढि इक्क भागतो ॥
इग ठाणाइ असुहो असुहाण सुहो सुहाणतु ॥६५॥
तिव्वमिग थावरायव सुरमिच्छा बिगल सुहुम निरयतिग ॥
तिरि मणुआउ तिरि नरा तिरिदुग छेवट्ठ सुरनिरया ॥६६॥
विउवि सुरा हारग दुग सुखगइ वन्न चउ तेअ जिण सायं ॥
समचउ परघा तसदस पणिंदि सासु च खवगाउ ॥६७॥

नींव और शाठे के स्वाभाविक रस को दो, तीन चार भाग को उकाल के अर्थात् काढा बना के एक भाग रक्खे वह अशुभ प्रकृतिका एक स्थानिक वगैरेह अशुभ रस है, और वैसे ही शुभ प्र० का शुभ रस समझना। (एक स्थानिक रस के स्पर्द्धक असंख्याते होते हैं और वे स्पर्द्धक उत्तरोत्तर अनन्त गुण रसवाले होते हैं एवं दो, तीन, चार स्थानिक रस स्पर्द्धक भी असंख्याते है और परस्पर अनन्त गुण रस वृद्धीवाले हैं। जितने अध्यवसाय स्थान हैं। उतने ही अनुभाग स्थान हैं क्योंकि अनुभाग अर्थात् रसका कारण कषायिक परिणाम हैं और कषायिक परिणाम अध्यवसाय के तीव्र तीव्रतर, तीव्रतम, मंद मंदतर, मंदतम आदि रुप से असंख्याते भेद हैं देखिये कम्मपयडी की ३१ वी गाथा श्री यशोविजयजीकृत टीका–कषायिक परिणामज य अनुभाग स्थान भी कषायिक परिणाम के तुल्य अर्थात् असंख्याते ही है) ॥६५॥ एकेंद्रिय स्थावर, आतप कर्म का उ० रसबंध मिथ्यात्वी तिर्यंच और मनुष्य करते है ॥ तिर्यंचद्विक, छेवट्ठ संघयण का उ० रसबंध देवता नारकी करते है ॥६६॥ वैक्रियद्विक, सुरद्विक आहारकद्विक, शुभ विहायोगति, वर्ण चतुष्क तैजस चतुष्क, जिननाम, सातावेदनी समचतुरस्र संस्थान, पराघात त्रसदशक पंचेद्रिय जाति, उश्वास और उच्चगोत्र एवं ३२ प्र० का उ० रस सूक्ष्म संपराय और पूर्व करण गु० वर्त्ति क्षपक श्रेणीवाला बांधे ॥६७॥

तमतमगा उज्जोअं सम्मसुरा मणुअ उरल दुग वइरं ॥
अपमत्तो अमराउ चउगइ मिच्छाउ सेसाणं ॥६८॥
थीण तिगं अण मिच्छं मंदरसं संजमुम्मुहो मिच्छो ॥
बिअ तिअ कसाय अविरय देस पमत्तो अरइ सोए ॥६९॥
अपमाइ हारग दुगं दुनिद्द असुवन्न हास रइ कुच्छा ॥
भय मुवघाय मपुव्वो अनिअट्टी पुरिस संजलणे ॥७०॥
बिग्घा वरणे सुहुमो मणु तिरिआ सुहुम विगल तिग आऊ ॥
वेउव्विछक्कम रमा निरया उज्जोअ उरल दुगं ॥७१॥

तम तम प्रभा नारकी के जीव उद्योत नाम कर्म का उ० रस बांधते है। सम्यक्त्व दृष्टि देवता, मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक और वज्र रुषभनाराच संघयण का उ० रस बांधे. । अप्रमत्तसाधु देवायु का उ० रस बांधे और शेष ६८ प्र० का उ० रस चारोंगतिके उत्कृष्ट कषाय वाले मिथ्यादृष्टि जीव बांधते है ॥६८॥ सम्यक्त्व चारित्र के सन्मुख हुवा मिथ्यादृष्टि जीव थीणद्धित्रिक, अनन्तानुबधी कषाय, और मिथ्यात्व मोहनी का जघन्य रस बांधे। देशविरति चारित्र सन्मुख सम्यग्दृष्टि जीव अप्रत्याख्यानी कषाय को और सर्व विरति चारित्र सन्मुख देशविरतिजीव. तीजे कषाय को ज० रससे बांधे । प्रमतसाधु, अरति और शोक को ज० रससे बांधते है ॥६९॥ अप्रमत्तसाधु, आहारक द्विकको और अपूर्व करण गु० वर्तिक्षपक श्रेणीवाले निद्राद्विक, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय और उपघात नाम कर्मको ज० रस बाधते है ॥ अनिवृत्ति गु० वाले क्षपक पुरुषवेद और संज्वल कषाय का ज० रस बांधे ॥७०॥ पांच अन्तराय, और ज्ञान. दर्शनके नौ आवरण का ज० रस सूक्ष्म संपराय गु० वाले बांधे । सूक्ष्मत्रिक विकलेन्द्रियत्रिक, चार आयुष्य और वैक्रिय षटक एवं १६ प्र० का ज० रस मनुष्य और तिर्यंच बाधते है. । देवता नारकी उद्योत और औदारिक द्विकको ज० रससे बांधे ॥७१॥

तिरि दुगनिअं तमतमा जिणमविरय निरय विणिग थावरयं ॥
आसुहुमायव सम्मो व साय थिर सुभ जसा सिअरा ॥७२॥

तस वन्न तेअ चउमणु खगइ दुग पणिंदि सास परं घुच्च ॥
संघयणा गिइ नपुत्थी सुभगिअरति मिच्छ चउ गइआ ॥७३॥

चउतेअ वन्न वेअणिअ नामणुक्कोस सेस धुवबंधी ॥
घाइण अजहन्नो गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥

तिर्यंचद्विक और नीच गोत्र के ज० रस को तम तम प्रभावनारकी बाधे जिन नामका ज० रस अविरति सम्यक्त्वदृष्टि मनुष्य बाधें । नरक बिना शेष तीन गति के जीव एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नामकर्मका ज० रस बाधे । सौधर्म ईशान पर्यंत देवता आतप नामकर्मका ज० रस बाधे । सम्यक्त्वदृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव, साता, स्थावर शुभ और यश इनकी प्रतिपक्ष ४ एव ८ प्र० का ज० रस बाधे ॥७२॥ त्रस ४, वर्ण ४, तैजस ४ (तै० का० अगु० नि०) मनुष्यद्विक, खगतिद्विक, पचेन्द्रिय, उश्वास, पराघात, ऊच गोत्र संघयण ६, संस्थान ६ नपु सकवेद, स्त्रीवेद, सौभाग्यत्रिक और दुर्भाग्यत्रिक एव ४० प्र० का ज० रस चारोंगतिवाले मिथ्यादृष्टि जीव बाधते है ॥७३॥ तेजस ४, शुभवर्ण ४, वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्ट रसबंध शेष ४३ ध्रुवबन्धी प्रकृति तथा १४ घाति प्र० का अजघन्य रस और गोत्र कर्मका अनुत्कृष्ट और अजघन्य दोनों रसबध चार प्रकार से है (सादि अनादि, ध्रुव, अध्रुव) ॥७४॥

सेसमि दुहा (अणु भागबन्धो सम्मत्तो) (वर्गणा स्वरूपमाहः)
इग दुगणु गाइ जा अभवणंत गुणिआणु ॥

खंधा उरलोचि अवग्गणा उ तह अगहणं तरिया ॥७५॥

ऐ मेव विउव्वाहार तेअ भाषाणु पाण मणकम्मे ॥
सुहुमा कमावगाहो ऊणूणंगुल असंखंसो ॥७६॥

इक्किकहिया सिद्धाणंतंसा अंतरेसु अग्गहणा ॥
सव्वथ जहन्नु चिआ निअणंतं साहिया जिट्ठा ॥७७॥

शेष प्रकृति और तीन प्रकार के रसबन्ध के विषय दो भांगे है (सादि अध्रुव) "वर्गणा स्वरूप." एक अणुक, दो अणुक एवं यावत् अभव्य से अनन्तगुणे परमाणु निष्पन्न स्कंध वह औदारिक ग्रहण योग्य वर्गणा होती है। एवं एकेक परमाणुकी वृद्धि से ग्रहण योग्य वर्गणा के पश्चात् अग्रहण योग्य वर्गणा होती है ॥७५॥ इस तरह यावत् अनन्त वृद्धि होने पर वैक्रिय ग्रहण योग्य वर्गणा. एवं आहारक, तेजस, भाषा श्वासोश्वास, मन और कारमण वर्गणा की भी परस्पर एकेक से अनन्त गुणी वृद्धि समझ लेना और यह औदारिकादि ८ वर्गणा अनुक्रम से सूक्ष्म सूक्ष्म होती है. अवगहना हीन हीन अगुंल के असख्यभाग होती है ॥७६॥ एकेक परमाणु अधिक यावत् सिद्धों के अनन्त में भाग औदारिकादि वर्गणा विषय अग्रहण वर्गणा होती है. सर्व वर्गणा विषय जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा से अरन अनन्तवें भाग अधिक उत्कृष्ट वर्गणा होती है ॥७७॥

अतिम चउफास दुगध पच वनरस कम्म खधदल ॥
सव्वजिअणत गुणरस अणुजुत मणतय पएस ॥७८॥
एग पएसो गाढ निअसव्व पएसओ गहेड जिओ ॥
थोवो[1] आउ तदसो[2] नामे गोए[3] समो अहियो ॥७९॥

अन्त के चार स्पर्श, दो गध, पाच वर्ण, पाच रसवाले कर्मस्कध जो सर्व जीवों से भी अनन्त गुणे रसवाले अणुवों से युक्त है। अनन्त प्रदेशी एक प्रदेश क्षेत्र को अवगाह कर रहने वाले कर्मस्कध को अपने सर्व प्रदेशों से जीव ग्रहण करता है वह (ग्रहण किया हुआ अनन्त स्कधमय कर्मदल) का सबसे स्तोक भाग आयुष्य कर्मपन परिणमता है नाम और गोत्र कर्म के विषय तुल्य परन्तु आयुष्य कर्म से अधिक भाव परिणमता है विवेचन—जीव कैसा कर्म दलिक ग्रहण करते हैं, वह कहते हैं आठ स्पर्श में से अन्त के ४ स्पर्श (शीत उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष) होते हैं एक परमाणु में पूर्वोक्त ४ स्पर्श में दो स्पर्श प्रतिपक्षी होते हैं यादा परमाणु इकठे होने से चारों स्पर्श मिलते हैं और ये वर्ण ५,गध २, रस ५, युक्त होते हैं परमाणु में वर्ण गध रस एकेक ही होता है) ऐसे कर्मस्कध के दलीये जो प्रत्येक परमाणु प्रति सब जीव से अन त गुणे रस के अविभाग परिछेद है ॥ ऐसे परमाणुवों से युक्त और अनन्त प्रदेशी अर्थात् अभव्य से अनन्त गुणे परमाणु मयकत एक प्रदेशावगाढ जिस आकाश प्रदेश को अवगाहनामें जीव रहा हो उसी आकाश प्रदेश को अवगाहा हुवा परन्तु अ तर परस्पर प्रदेशावगाढ नहीं। ऐसे कर्मस्कध दलिक को जीव अपने सर्व प्रदेशों से ग्रहण करता है ७८ अध्यवसाय से ग्रहण किये कर्मदल जो अष्टविध बन्धक हो तो आठ भाग सात विधि बधक हो तो सात भाग और छ विध बधक हो तो छे भाग होते हैं ॥७८-७९॥

विग्घावरणे[४] मोहे[६] सव्वो[७] वरि वेअणीइ[८] जेणप्पे ॥
तस्सा फुडत्तं नहवइ ठिइ विसेसेण सेसाणं ॥८०॥
निअजाइलद्धदलिआणं तं सो होइ सव्व घाइणं ॥
वज्झंतीण विभज्जइ सेसं सेसाण पइ समयं ॥८१॥
सम्म[१] देस[२] सव्व[३] विरइउ अणविसंजोअ[४] दंस खवगेअं[५] ॥
मोह[६] सम[७] संत खवगे[८] खीण[९] सजोगि[१०] अरगुणसेढी[११] ॥८२॥
गुणसेढी दलरयणाणु समयमुदयाद संखगुणणाए ॥
एअगुणापुण कमसो असंख गुण निज्जरा जिवा ॥८३॥

अन्तराय, ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म विषय परस्पर तुल्य और गोत्रकर्म से अधिक इससे मोहनीयकर्म विषय अधिक और वेदनीयकर्म विषय सबसे अधिक भाग परिणमते हैं। स्तोक दलिक होने से वेदनीयकर्म का स्पष्ट अनुभव नहीं होता और बाकी कर्मो की स्थिति विशेष करके हीनाधिक भाग होती हैं ॥८०॥ अपनी मूल प्रकृति रूप जाति से प्राप्त किये हुए कर्म दलिक का अनन्तवां भाग सर्वघाति प्रकृति के भाग मे आता है और बाकी रहे हुवे प्रदेश शेष बन्धती हुई प्रकृतियों को प्रति समय बटजाता है ॥८१॥ गुणश्रेणी सम्यक्त्व प्राप्ति यह प्रथम गुणश्रेणी १; देशविरति २, सर्व विरति ३, अनन्तानुबंधी की विसयोजना ४, दर्शन मोहनीय क्षये ५ चारित्र मोहनीय उपशमें अर्थात् उपशमश्रेणि विषय ६-१० गुणस्थानक मे ६, उपशांत गुणस्थानक में ७ क्षपकश्रेणी ६-१० गु० में ८, क्षीणमोह गु० में ९, सयोगी केवली १०, आयोगी केवली ११, यह ग्यारह गुण श्रेणी अर्थात् गुणाकारे प्रदेश रचना होती है ॥८२॥ उस गुणश्रेणी विषय कर्म दल की रचना प्रति समय उदय क्षण की अपेक्षा से असख्यात २ गुणी होती है और पूर्वोक्त गुणश्रेणी वाले जीव अनुक्रम से असंख्यात २ गुणी निर्जरावाले होते हैं ॥८३॥

पलिआऽसंखसमुहू सासण इअर गुणअंतर हस्स ॥
गुरु मिच्छिवे छसठी इअर गुणे पुग्गलद्ध तो ॥८४॥
उद्धार अद्ध खित्त पलिअ तिहा समय वासमय समए ॥
केसवहारो दीवोदहि आउ तसाइ परिमाणे ॥८५॥
दव्वेखिते काले भावे चउह दुह वायरो सुहुमो ॥
होइ अणंतुसप्पिणीपरिमाणो पुग्गल परट्टो ॥८६॥
उरलाइ सत्तगेणं एगजिओ मुअइ फुसिअ सव्वअणु ॥
जत्तिअ कालिस थूलो दव्वे सुहुमो सगन्नयरा ॥८७॥

गु० विषय ज० उ० अन्तर ॥ सास्वादन और अन्य दूसरे गुण-स्थान का जघन्य अन्तर पल्योपम के असं० भाग है और अन्य गु० का ज० अन्तर अन्तरमुहूर्त का है । मिथ्यात्व गुण स्थानक का उ० अन्तर दोछासठ (१३२) सागरोपम का है और दूसरे १० गुणस्थानों का उ० अन्तर अर्ध पुद्गल परावर्त है ॥८४॥ पल्योपम उद्धार, अद्धा और क्षेत्र एवं ३ प्रकार के पल्योपम है ॥ ये अनुक्रम से बालाग्र प्रति समय बालाग्र सौ वर्ष में । और बालाग्र का स्पर्श, अस्पर्शे हुए आकाश प्रदेशों को प्रति समय अपहरण करने के दृष्टान्त से होता है इनसे द्वीप समुद्र, आयुष्य और त्रसादि जीवों की गिनती अनुक्रम से होती है । विशेषता से इनके सूक्ष्म बादर कहके छे भेद भी किये हैं ॥८५॥ पुद्गल परावर्त ॥ द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव विषयिक चार प्रकार से पुद्गल परावर्त इनको सूक्ष्म और बादर दो प्रकार से माने हैं । ये प्रत्येक अनन्त उत्सर्पिणि, अवसर्पिणी कालचक्र प्रमाण है । ॥८६॥ औदारिकादि सात वर्गणा ॥ आहारक बिना के चौदह राजलोकमें रहे हुए सर्व परमाणुवों को औदारिकादि सातोंपणे एक जीव स्पर्श कर त्याग करे उस काल को स्थूल द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते हैं और सातों वर्गणा में का एकेक कोई भी वर्गणा सब परमाणुवों को अनुक्रम से एकेक वर्गणापणे परिणाम ने त्याग करे उस काल को सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते हैं ॥८७॥

लोगप्पएसो सप्पिणि समया अणुभाग बंधठाणाय ॥
जहतह कममरणेणं पुठा खित्ताइ थूलि अरा ॥८८॥
अप्पयर पयडिबंधी उक्कड जोगीय सन्नि पजत्तो ॥
कुणइ पएसुक्कोस जहन्नयं तस्स वच्चासे ॥८९॥
मिच्छ अजय चउआउ बितिगुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ॥
छण्ह सतरस सुहुमो अजया देसा बिति कसाए ॥९०॥
पण अनि अट्ठ सुखगइ नराउ सुर सुभग तिग विउव्वि दुगं ॥
समचउरसममायं वइर मिच्छोव सम्मोवा ॥९१॥

क्षेत्रादि ३ पुद्गल परावर्त स्वरुप, लोकक्षेत्र के प्रदेश, उत्सर्पिणि अवसर्पिणि का समय और रसबन्ध के स्थान जैसे तैसे (बिना अनुक्रम) से स्पर्शे और दूसरा अनुक्रम पूर्वक मर करके स्पर्शे करे वह क्षेत्रादि बादर और सूक्ष्म पुद्गल परावर्त अनुक्रम से होता है ॥८८॥ अल्पत्तर प्रकृति का बांधने वाला जिसका सबसे उत्कृष्ट योग हो ऐसा सज्ञी पर्याप्ता जीव उत्कृष्ट प्रदेश का बन्धक होता है और विपरितपने जघन्य प्रदेश बन्धक होता है ॥८९॥ प्रदेश बन्ध स्वामी मिथ्यादृष्टि और अविरति आदि चार (अवि० दे० प्र० अप्र०) गुणस्थानकवाले। आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट बन्ध करते हैं दूसरे और तीसरे गु० बिना, मिथ्यात्वादि ७ (अनिवृत्ति पर्यन्त) गु० वाले मोहनीय कर्मका, सूक्ष्म संपराय वाले छे मूल और उत्तर १७ प्र० का, अविरति दूसरे कषाय का और देशविरति तीसरे कषाय का उत्कृष्ट बंध करता है ॥९०॥ अनिवृत्ति बादर गु० वाला (पुरुषवेद संज्ज०४) पांच प्रकृति का, और मिथ्यात्वी अथवा सम्यग्दृष्टि जीव शुभ विहायोगति, मनुष्यायु सुरत्रिक, सोभाग्य-त्रिक वैक्रियद्विक, सम चतुस्रसंस्थान, असातावेदनी, और वज्रऋषभना-राच संघयण एवं १३ प्र० का उत्कृष्ट प्रदेश बंध मिथ्यात्वी या सम्यक्त्व-दृष्टि उत्कृष्ट योग से वरतता हुवा बाँधे ॥९१॥

निद्दापयला दुजुअल भयकुच्छा तित्थ सम्मगो सुजई
आहार दुग सेसा उक्कोस पएसगा मिच्छो ॥ ९२ ॥
सुमुणि दुन्नि असन्नि निरयतिग सुराउ सुर विउव्विदुग ॥
सम्मो जिणं जहन्नं सुहुमनिगो आइ खणीसेसा ॥ ९३ ॥
दं सण छक्क भयकुच्छाबितितुरिअ कसाय विग्घ नाणाण ॥
मूलछगे णुक्कोसो चउह दुहासेसि सव्वत्थ ॥ ९४ ॥

निद्रा प्रचला, हास्य, युगल, भय, जुगुप्सा, का उ० प्र० बन्ध सम्यक्त्व दृष्टि ॥ आहारक द्विक का सुयति अर्थात् अप्रमत्त साधु और शेष ६६ प्र० का उ० प्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ॥ ९२ ॥ (जघन्य प्रदेशबन्ध स्वामी कहते हैं) अप्रमत्त यति आहारक द्विक को, असंज्ञि पर्याप्त नरकत्रिक और देवायुष्य को, सम्यक्दृष्टि (नारकी देवता से च्यव कर मनुष्यभव प्रथम समय) देवद्विक, वैक्रिय द्विक और जिन नाम कर्म को ज० प्रदेशबन्ध से बांधे और शेष १०९ प्र० को अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव उत्पत्ति प्रथम समय ज० प्रदेशबन्ध से बांधते हैं ॥ ९३ ॥ दर्शनषट्क (४ द० दो निद्रा) भय, जुगुप्सा, दूसरा, तीसरा, चौथा कषाय, पांच अन्तराय, पांच ज्ञानाव० का और मोहनीय, आयुष्य कर्म वर्ज के शेष छः मूल प्रकृतियों के विषय अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध चार प्रकार (सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव) से होता है। शेष तीन प्रकार के प्रदेशबन्ध विषय और बाकी रही हुई सर्व प्रकृतियों के प्रदेशबन्ध विषय सर्वत्र दो भांगे (सादि, अध्रुव) से बन्ध होता है। जिसके १०१६ भांगे होते हैं। सो यन्त्रान्तर्गत समझ लेना ॥ ९५ ॥

सेढि असंखिज्जंसे जोगट्ठाणाणि पयडि ठिई भेआ ॥
ठिईबंधज्झ कसायाणु भागठाणा असंखगुणा ॥ ९५ ॥

तत्तो कम्मपएसा अणंतगुणिया तओ रसच्छेआ ॥
जोगा पयडि पएसं ठिई अणुभगं कसायाओ ॥ ९६ ॥

चउदसरज्जूलोगो बुद्धिकओ सत्तरज्जूमाणघणो ॥
तद्दीहेग पएसो सेढी पयरो अ तव्वगो ॥ ९७ ॥

पूर्वोक्त योगस्थान सबधी सात बोल का अल्पाबहुत्व कहते हैं ॥ श्रेणी के असं० भाग अर्थात घनीकृत सात राजकी लम्बी एक प्रदेश की आकाश श्रेणी उसके असं० भागमें जितने आकाश प्रदेश हो उतने योग स्थान वीर्य के सूक्ष्म विभाग हैं, स्वाप्रायोग्य सर्व जघन्य योग स्थान विषय जीव ज० १ समय उ० ४ समय तक रहता है। उत्कृष्ट योग स्थान विषय ज० १ उ० २ समय रहता है। मध्यम योग स्थानमे ज० १ उ० ८ समय तक रहता है। वे योग स्थान[1] असंख्याते हैं। इससे प्रकृति[2] भेद असं० गुणे, जिससे स्थिति[3] भेद, स्थिति बन्ध अध्यवसाय[4] स्थान. और रसबन्ध[5] के अध्यवसाय स्थान अनुक्रमसे असं० असं० गुण होते हैं ॥९५॥ इस से कर्म[6] प्रदेश अनन्त गुणे। इससे रसविभाग पलिछेद अर्थात् रस अविभाग के अणुवें अनन्त गुणे। (प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधका हेतु कहते हैं) योगसे प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है, तथा कषायसे स्थिति और रसबन्ध होता है,॥ चोदह राज प्रमाण लोक है,॥ उसको मति कल्पना से घन करने पर सात राज प्रमाण होता है, उस घनीकृत लोक प्रमाण लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी को शुची श्रेणी कहते है, उस शुचि श्रेणी का वर्ग करने से प्रतर होता है ॥९७॥

४ ३ १
अणदंस नपु सित्थी वेअच्छक्क च पुरिस वेअच ॥
दो दो एगतरिए सरिसे सरिस उवसमेइ ॥ ९८ ॥

४ १ १ १ ३ १ ३ ३ १
अणमिच्छ मीस सम्म तिआउ इग विगल थीण तिगुजोअ ॥
२ २ २ १ १ ८ १ १
तिरि निरय थावर दुग साहारायवअड नपु सित्थी ॥ ९९ ॥

६ १ ४
छग पुम सजलणा दोनिदा विग्घा वरण खए नाणी ॥
देविंदसूरिलिहिअ सयगमिण आयसरणट्ठा ॥ १०० ॥ इति

(उपशम श्रेणी करने वाला) अनंतानुबंधी कषाय ४, दर्शनमोहनीय ३ नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि षट्, पुरुषवेद और एकेक सज्वल कषाय के अंतर से दो दो दूसरे कषाय बराबरी के अनुक्रम से उपशमावे ॥ ९८ ॥ स्थापना (क्षपक श्रेणीक करने वाला) अनंतानुबंधी कषाय ४, दर्शन मोहनीय ३, आयुष्य ३, एकेन्द्रिय, विकलेंद्रिय, थिणद्धित्रिक, उद्योतनाम, तिर्यंच द्विक, नरक द्विक, स्थावर द्विक साधारणनाम, आतपनाम, दूसरा तीसरा कषाय ८, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, ॥ ९९ ॥ हास्यादिषट्, पुरुषवेद, सज्वल कषाय दो निद्रा पाच अंतराय, नौ दर्शनावरणीय क्षय होने से केवली होते हैं ॥ यह शतकनामा कर्मग्रन्थ अपनी आत्मा को सभालने के लिये देवेन्द्रसूरिजी ने लिखा ॥ १०० ॥ इति



उपशमश्रेणी

उपशम यति

संज्वल लोभ २८

अप्र० लोभ २६	प्रत्या० लोभ २७

संज्वलमाया २५

अप्र० माया २३	प्रत्या० माया २४

संज्वलमान २२

अप्र० मान २०	प्रत्या० मान २१

संज्वलक्रोध १९

अप्र० क्रोध १७	प्रत्या० क्रोध १८

पुरुषवेद १६

हास्यादि षट्क १५

स्त्रीवेद ९

नपुंसकवेद ८

मिथ्या० मिश्र० सम्य० मोहनीय
१ २ ३ ७

अनुतानुबंधी क्रो० मा० मा० लो०
१ २ ३ ४

क्षपकश्रेणीयन्त्रम्

	तत सिद्ध गति क्षयगति १४८ १२ प्रकृति ७३ प्रकृति	१४ वे० गुणस्था० १३ वे० ,,
	ज्ञानाव० ५ दर्शना० ४ अन्तराय५ एव १४	
	निद्रा द्विक २ सञ्जल लोभ १ सञ्वल माया १ सज्वल मान १ सञ्जल क्रोध १ पुरुष वेद १ हास्यादि षट् ६ स्त्रीवेद १ नपुसक वेद १ एकेन्द्रियादि १६ प्र०	१२ वे० गुणस्था० १० वे० गुणस्था०
	अप्रत्या० क्रोध मान माया लोभ० प्रत्या० क्रोध मान माया लोभ ८	
	देव नारकी तीर्यचायु ३ सम्यकत्व मोहनीय १ मिश्र मोहनीय १ मिथ्यात्व मोहनीय १	४-५-६ ७ वे गुण स्थानकर्मे
	अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ ४	

॥ इति शतक नामा पचम कर्मग्रन्थ समाप्तम् ॥

श्री देवेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज कृत पांचों कर्मग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद शा० लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराज मुणोत फलौदी वाले ने स्वपर हित के लिये अपनी बुद्धि अनुसार पूर्वाचार्यो के ग्रन्थान्तर से उधृत कर संक्षेप से किया है। मति दोष से कहीं न्युनाधिक लिखा हो उसको सज्जन जन कृपा करके सुधार लेंगे । विक्रम संवत १६८? मिती श्रावण सुद १५ । शुभम् भवतु ।



मेघध्वनि वर्षत हिय हर्षत है जग जीवन को सुखदाई ।
घन ज्यू घोर मोर सुनि हर्षित तन मन अति ही हुलसाई ॥
राजित वाजित सुरनर सेवित पद कज रज को शीष चढाई ।
जय जग जीवन नित हित चित धर वीर धीर को शीप नमाई ॥ १ ॥
मुनि गण बीच सुशोभ दिवाकर कर्म विपाक जो दिय दिखाई ।
नौविधिब्रह्म कीर्ति यश छाजित, राजित सूरि देविन्द्र सदाई ॥
तत्वज्ञान श्री कर्मग्रन्थ को शब्दार्थ किनो सुखदाई ।
फलवृद्धि का सुहोय सदा जेहि ज्ञान रत्न को कठे ठाई ॥ २ ॥

इति पांचों कर्मग्रन्थ हिन्दी सानुवाद समाप्त ।



॥ॐ नमः सिद्धं ॥

श्री चन्द्रमहत्तराचार्य कृत

सप्ततिका नामा षष्ट कर्मग्रन्थ.



मंगल और अभिधेय

सिद्धपएहिं महत्थं, बंधोदय संत पयडि ठाणाणं ॥
वुच्छं सुण संखेवं, नीसंदं दिट्ठि वायस्स ॥ १ ॥

कइ बंधतो वेअइ, कइ कइ वा संत पयडि ठाणाणि ॥
मूलुत्तर पगईसु, भंग विगप्पा मुणेअव्वा ॥ २ ॥

मूल प्रकृति के बंधोदय सत्ता संवेध

अट्ठविह सत्त छब्बंधएसु, अट्ठेव उदय संतंसा ॥
एगविहे तिविगप्पो, एगविगप्पो अबंधंमि ॥ ३ ॥

जीवस्थान विषय मूल प्रकृति भंग

सत्तट्ठ बंध अट्ठुदय, संततेरससु जीवठाणेसु ॥
एगंमि पंच भंगो, दो भंगो हुंति केवलिणो ॥४॥

गुणस्थान विषय भंग

अट्ठसुएक्क विगप्पो, छस्सुवि गुण सन्निएसु दुविगप्पो ॥
पत्तेअं पत्तेअं बंधोदय संत कम्माणं ॥५॥

आठ कर्मों की उत्तर प्रकृति.

पंचनव दुन्नि अट्ठावीसा, चउरो तेहव बायाला ॥
दुन्निअ पंचय भणिया, पयडियो आणु पुव्वीए ॥६॥

उत्तर प्रकृतियों का बंधोदय सत्तासंवेध.

बंधोदय संतंसा, नाणावरणांतराइए पंच ॥
बंधोवरमेवि उदय, संतं सा हुंति पंचेव ॥७॥

दर्शनावरणीय कर्म का गुणस्थान विषय बंधस्थानादि

बंधस्सय संतस्सय, पगइ ठाणाइ तिण्णि तुल्लाइ ॥
उदय ठाणाइ दुवे, चउपणगं दंसणावरणे ॥८॥

दर्शनाव० का गुणस्थान विषय संवेधबंध.

बीआ वरणे नव बंधएसु, चउ पंच उदय नव संता ॥
छच्चउबंधे चउ बंधुदए छलंसाय ॥९॥
उवरय बंधे चउपण, नवंस चउरूदय छच्चऊ संत ॥
वेअणि आउअ गोए, विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥१०॥

गोत्र वेदनीय और आयु कर्म के संवेधभंग.

गोअंमि सत्त भंगा, अट्ठय भंगा हवंति वेअणिए ॥
पण नव नव पण भंगा, आउ चउक्के वि कमसो उ ॥११॥

मोहनोय कर्म का बंधस्थान.

बावीस इक्कवीसा, सत्तरसं तेर सेव नव पंच ॥
चउतिग दुगं चइक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥१२॥

मोहनीय के नव उदयस्थान

एग व दोव चउरो, एत्तो एगाहिआ दसुक्कोसा ॥
ओहेण मोहणिज्जे, उदय ठाणाणि नव हु वि ॥ १३ ॥

मोहनीय के पन्द्रह सत्तास्थान

अट्ठय सत्तय छच्चउ, तिगदुग एगाहिआ भवेवीसा ॥
तेरस बारिक्कारस, इत्तो पचाइ एगूणा ॥ १४ ॥
सतस्स पयडि ठाणाणि, ताणि मोहस्स हु ति पन्नरस ॥
ब धोदय सते पुण, भग विगप्पे बहूजाण ॥ १५ ॥

मोहनीय के बधस्थान भग

छब्बावीस चउइग, वीसे सत्तरस तेरसे दो दो ॥
नव ब धगे वि दुण्णिओ, इक्किक्क मओपर भगा ॥ १६ ॥

कौन २ से बधस्थानमें कितने २ उदयस्थान हैं

दस बावीसे नव इगवीसे, सत्ताइ उदय कम्मसा ॥
छाइ नव सतरसे, तेरे पचाइ अट्ठेव ॥ १७ ॥

नव प्रकृतिके बध भग

चत्तारि आइ नव ब ध एसु उक्कोस सत्तमुदयसा ॥
पचविह ब धगे पुण, उदओ दुण्ह मुखे अन्तो ॥ १८ ॥

बधस्थान उदयस्थान

इतो चउब धाइ इक्किक्कुदया हवति सव्वेवि ॥
ब धो वरमे विवहा, उदया भावे विवा हुआ ॥ १९ ॥

उदय स्थानभंग

इक्कग छक्किक्कारस, दस सत चउक्क इक्कगं चेव ॥
एए चउवीसगया, वार दुगिक्कमिइक्कारा ॥ २० ॥
(पाठान्तर) चउवीस दुगिक्कि मिक्कारा ॥ २० ॥

इन भागोंकी विशिष्टपने सख्या और पद वृंदानि

नवतेसीइसएहिं, उदयविगप्पेहिमोहिआ जीवा ॥
अउणुतरि सीआला, पयविंद सएहि विन्नेआ ॥ २१ ॥

मतान्तरे भंग सख्या और पद संख्यमाह

नवपंचाण उअसए, उदय विगप्पेहि मोहिआ जीवा ॥
अउणुतरि एगुतरि, पयविंद सएहिं विन्नेआ ॥ २२ ॥

बंधस्थाने सत्तास्थान

तिन्नेवय बावीसे, इगवीसे अट्ठवीससतरसे ॥
छच्चेव तेरनवबंध एसु पंचेव ठाणाणि ॥ २३ ॥

पंचविह चउविहेसु, छछक्क सेसेसु जांण पंचेव ॥
पतेअं पतेअं, चतारि अबंधवुच्छेए ॥ २४ ॥

दस नव पन्नर साउ बंधोदय संत पयडि ठाणाणि ॥
भणिआणि मोहणिज्जे, इत्तोनामं परंवुच्छं ॥ २५ ॥

नामकर्मके बंधस्थान

तेवीस पण्णवीसा छव्वीसा अटवीस गुणतीसा ॥
तीसेग तीसमेगं, बंध ठाणाणि नामस्स ॥ २६ ॥

बंधस्थानक विषय भंग संख्या

चउपण वीसासोलस, नव नाण उईमया यअडयाला ॥
ग्यालूत्तर छायाल मया इक्किक्कि बंधविहि ॥२७॥

नामकर्म के बारह उदयस्थान

वीसिगविसा चउवीसग्गाउ एगाहिआ या इगतीसा ॥
उदय ठाणाणी भवे, नव अट्ठय हु ति नामस्स २८॥

उदयस्थाने सर्व भंग संख्या

इक्क विआलिक्कारस, तित्तिसा छस्सयाणि तित्तीसा ॥
बारम सत्तरस सयाणहिगाणि बिपचसीईहि ॥२९॥
अउणत्ती सिक्कारस, सयाणि हिअ सत्तर पंच सट्ठीहि ॥
इक्किक्कगचवीस, दट्ठुदयतेसु उदय विहि ॥३०॥

नाम कर्म के सत्तास्थान

तिदुनउई गुण नउई, अटसी छलसी असीइ गुणसीई ॥
अट्ठय छप्पन्नत्तरि नवअट्ठय नाम सताणि ॥३१॥

नामकर्म का बंधोदय सत्तास्थान

अट्ठ यबारस बारस, बंधोदय सत पयडि ठाणाणी ॥
ओहेणाउएसेणय जत्थ जहा संभव विभ जे ॥३२॥

सामान्यपने बंधोदय सत्ता संवेध

नवपणगोदय सत्ता, तेवीसे पणवीस छव्वीसे ॥
अट्ठ चउरट्ठ वीसे नवसत्ति गुणतीसतीसम्मि ॥३३॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म बंधस्थान.

गुणठाणएसु अट्ठसु, इक्किक्कं मोहबंधठाणं तु ॥
पंचा अनिअट्टिठाणे, बंधोवरमो परंतत्तो ॥ ४८ ॥

गुणस्थाने मोहनीय कर्म उदयस्थान.

सत्ताइदस उमिच्छे, सामयणमीसए नवुक्कोसो ॥
छाइ नवउ अविरए, देसे पंचाइ अट्ठेव ॥ ४९ ॥

विरए खओवसमिए, चउराइसत्त छच्च पुव्वंमि ॥
अनि अट्टिबायरे पुण, इक्कोव दुवे व उदयंसा ॥ ५० ॥

एगं सुहुमसरागो, वेएइ अवेअगा भवे सेसा ॥
भगाणंच पमाणं, पुव्वुदिट्ठेण नायव्वं ॥ ५१ ॥

मोहनीयकर्म उदयस्थाने भगसख्या.

इक्क छडिक्कारिक्कारसेव इक्कारसेव नवतिन्नि ॥
एए चउवीसगया, बारदुगेपंच इक्कमि ॥ ५२ ॥

सर्वभंग सख्या

बारस पण सट्ठिसया, उदयविगप्पेहि मोहिआजीवा ॥
चुलसीई सत्तुतरि, पयविंदसएहि विन्नेआ ॥ ५३ ॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म उदयभग.

अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगाय चउरो अहुंति चउवीसा ॥
मिच्छाइ पपुव्वंता, बारस पणगंच अनिअट्टी ॥ ५४ ॥

गुणस्थाने योगादिभंग

जोगो व ओगलेसाइएहिं गुणिआ हवंति कायव्वा ॥
जेजत्थगुणठाणे, हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥ ५४ ॥

गुणस्थान उदयपद

अट्ठट्ठीबत्तीसं, बत्तीसं सट्ठिमेव बावन्ना ॥
चोआल दोसु वीसा, विअमिच्छ माइसु सामन्नं ॥ ५६ ॥

गुणस्थाने मोहनीयकर्म सत्तास्थान

तिन्नेगे एगेगं, तिगमीसे पंच चउसु तिग पुव्वे ॥
इक्कार बायरं मिउ, सुहमे चउ तिन्नि उवसंते ॥ ५७ ॥

गुणस्थाने नामकर्म बंधुदय सत्तास्थान

छन्नव छक्कं तिगसत्त, दुगदुग तिग दुग तिअट्ठ चउ ॥
दुगछच्चउ दुगपण चउ चउदुगचउपणगएचउ ॥ ५८ ॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ, छउमत्थ केवलि जिणाणं ॥
एग चउ एग चउ, अट्ठ चउदुछक्कमुदय सा ॥ ५९ ॥

मिथ्यात्वे बंधभंग

चउपणवीसासोलस, नव चचालासया य बाणउई ॥
बत्तीसुत्तर छायालसया, मिच्छस्स बंधविहिं ॥ ६० ॥

सास्वादने बंधभंग

अट्ठसया चउसट्ठी, बत्तीसयसाइं सासणे भेआ ॥
अट्ठावीसाईसु, सव्वाणट्ठहिगछन्नउई ॥ ६१ ॥

मिथ्यात्वगुणस्थाने उदयभंग.

इगचत्तिगारबत्तीस, छसय इगतीसइगार नवनउइ ॥
सतरिगसिगुनीस चउदइगार चउसट्ठिमिच्छुदया ॥ ६२ ॥

सास्वादन गुणस्थाने उदयभंग.

बत्तीस दुन्नि अट्ठय, बासीइ सयायपंचनव उदय ॥
बारऽहिआ तेवीसा बावन्निक्कारससयाय ॥ ६३ ॥

गतिमार्गणा विषयनामकर्म के बंधुदय सत्तास्थान.

दोछक्कट्ठचउक्कं, पणनवइक्कारछक्कगं उदया ॥
नेरइ आइसुसत्ता, तिपंचइक्कारस चउक्कं ॥ ६४ ॥

जतिमार्गणाए बंधुदय सत्तास्थान.

इगविगलिंदिअ सगले, पणपंचय अट्ठबंधठाणाणं ॥
पणछक्किक्कारुदया, पण पणबारसय संताणि ॥ ६५ ॥
इअ कम्मपगइठाणाणि सुट्ठुबंधुदयसंत कम्माणं ।
गइआइएहि अट्ठसु, चउप्पयारेणनेआणि ॥ ६६ ॥
उदयस्सुदीरणाए, सामितओ न विघज्जइ विसेसो ॥
मुत्तूणय इगयालं, सेसाणं सव्व पयडीणं ॥ ६७ ॥
नाणंतरायदसगं, दसणनववेअणिज्ज मिच्छत्तं ॥
सम्मत्तलोभवेआउआणि नव नाम उच्चं च ॥ ६८ ॥

गुणस्थाने बंधप्रकृति

तित्थयराहारग निरहिआउ, अज्जइसव्व पयडीओ ॥
मिच्छत्तवेअगो सासाणोवि गुणवीससेसाओ ॥६९॥
छायाल सेसमीस अविरय सम्मो तिआल परिसेसा ॥
तेवन्न देस विरओ, विरओ सगवन्नसेसाओ ॥७०॥
इगुणट्ठिमप्पमतो, बंधइ देवाउ अस्स इअरो वि ॥
अठावन्नमपुव्वो, छप्पन्नवावि छव्वीस ॥७१॥
बावीसाएगुण, बंधइ अट्ठारसंतमनिअट्ठी ॥
सतरसुहुमसरागो, सायममोहो सजोगुत्ति ॥७२॥
एसोउ बंध सामित्त ओहो गइ आइएसु वि तहेव ॥
ओहाओ साहिज्जइ जत्थ जहा पगइ सब्भावो ॥७३॥
तित्थयरदेव निरयाउअंच, तिसुतिसुगइसु बोधव्वं ॥
अवसेसा पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गइसु ॥७४॥

उपशमश्रेणी स्वरूप

पढमकसाय चउक्क, दंसण तिग सत्तगा वि उवसंता ॥
अविरयसम्मत्ताओ, जावनिअट्टिंति नायव्वा ॥७५॥
सत्तट्ठ नवय पनरस, सोलस अठारसेवगुणवीसा ॥
एगोहि दु चउवीसा, पणवीसा बायरे जाण ॥७६॥
सत्तावीस सुहुमे, अट्ठावीसंच मोह पयडीओ ॥
उवसंतवीअराए, उवसंता हु तिनायव्वा ॥७७॥

क्षपकश्रेणी.

पढमकसाय चउक्कं, इत्तोमिच्छत्त मीससम्मतं ॥
अविरय सम्मे देसे, पमत्ति अपमत्ति खीअंत्ति ॥७८॥
अनिअट्टिबायरे थीणगिद्धि निग निरय तिरिअ नामाओ ॥
संखिज्जइमेसेसे, तप्पाउग्गाओ खीअंति ॥७९॥
इत्तोहणइ कसायट्ठगंपि पच्छा नपुंसगं इत्थि ॥
तो नोकसायछक्कं, छुहइ संजलण कोहंमि ॥८०॥
पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणंच छुहइ मायाए ॥
मायंच छुहइ लोभे, लोहं सुहुमं पि तो हणइ ॥८१॥
खीण कसाय दुचरिमे, निद्दं पयलंच हणइ छउमत्थो ॥
आवरणमंतराए, छउमत्थो चरम समयंमि ॥८२॥
देवगइ सहगयाओ, दुचरम समयं भविअंमि खिअंति ॥
सविवागे अरनामा, नीआगोअंपि तत्थेव ॥८३॥
अन्नयरवेयणीअं, मणुआउअ मुच्चगोअनवनामे ॥
वेएइ अजोगिजिणो, उक्कोस जहन्नमिक्कारा ॥८४॥
मणुगइ जाइतसबायरच पज्जत्त सुभगमाइज्जं ॥
जसकित्ति तित्थयरं, नामस्स हवंति नवएआ ॥८५॥

मतांतरगाथा

तच्चाणु पुव्विसहिआ, तेरसभवसिद्धिअस्स चरमंमि ॥
संतंसग मुक्कोसं, जहन्नयं बारस हवंति ॥८६॥

मणुअगइ सहगयओ भवखित्तविवाग जिअविवाओ ॥
वेअणि अन्नयरुच्च, चरम समयंमि खीअंति ॥८७॥
अहसुइअ सयल जगसिहरमरुअ निरुवमसहाव सिद्धिसुह ॥
अनिहण मव्वाबाह, तिरयण सार अणुहवंति ॥८८॥

उपसंहार

दुरहिगम निउण परमत्थ रुइर बहुभगदिट्ठिवायाओ ॥
अत्था अणुसरिअव्वा, बंधोदय संतकम्माणं ॥८९॥
जो जत्थ अपडिपुन्नो, अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ॥
तं खमिऊण बहुसुआ, पूरेऊण परिकहंतु ॥९०॥
गाहग्ग सयरीए, चंदमहत्तरमयाणुसारीए ॥
टीगाइ निअमिआण, एगूणा होइ न उइओ ॥९१॥ इति

इति सप्ततिकाख्यः षष्ठःकर्मग्रन्थ

सपूर्णः